UNIVERSAL LIBRARY
OU_178008
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 398.8 V65S

Acc. No. GH 1835

विद्यावती कोकिल

सोहाग - गीत

सोहाग-गीत

[वैवाहिक लोक-गीतों का समीक्षात्मक संकलन]

लेखिका

विद्यावती 'कोकिल'

ज्योति-प्रकाशन प्रयाग ।

प्राक्कथन

श्री मती विद्यावती 'कोकिल, ने प्रस्तुत पुस्तक का प्राक्कथन लिखने का आग्रह कर मेरे ऊपर कृपा की है इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ। 'कोकिल' जी का आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में एक विशिष्ट स्थान हैं और उनकी भाषा तथा शैली पर उनकी साधना की छाप है। यह निश्चय है कि भौतिकवाद की आधुनिकता ने उन पर बहुत कम प्रभाव डाला है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कोकिल जी ने संस्कारों पर गाए जाने वाले गीतों का उत्तम संग्रह दिया है। संगीत शास्त्र के अनुकूल उनको स्वर दिया है और प्रसंग का मनोरंजक वर्णन किया है। आरंभ में भूमिका में कोकिल जी ने अपना दृष्ठि कोण स्पष्ट कर दिया है। उनके कथन से ग्रन्थ की उपादेयता स्वयंसिद्ध है।

मनुष्य ने अपनी संस्कृति युगों की साधना से सँजोई है। प्रत्येक जन समुदाय ने अलग अलग उसका विकास किया है। धर्म और जाति की विशेषताओं का उस पर प्रभाव पड़ा है, पर यह प्रभाव ऐसा नहीं है जो विद्वेष उत्पन्न करे। यह प्रभाव समन्वयात्मक है। विवाह के कृत्यों में घोड़ी और सेहरा आदि प्रत्यक्ष ही अभारतीय हैं पर जिन वर्गों में इनका चलन है उनको स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं होगा कि ये हमसे सम्बद्ध नहीं हैं।

गौरी, गणेश, शिव, राम, कृष्ण, सीता आदि आज हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। कन्या को गृह त्याग—और वर की प्राप्ति के

लिए तपस्या जरूरी है—गौरी उमा आदर्श हैं। विघ्न-विनाशन के लिए गणेश की पूजा जरूरी है। विवाह की मर्यादाओं के लिए राम और सीता की जोड़ी से बढ़कर कौन आदर्श मिलेगा।

गृह्य सूत्रों में विवाह आदि संस्कारों की वैदिक विधि दी हुई है। उस विधि में भारतीय संयुक्त परिवार के प्रत्येक सदस्य का स्थान नहीं है। किन्तु परम्परागत वैवाहिक कृत्यों में न केवल कन्या और वर के कुटुम्ब के व्यक्तियों का अपना विशिष्ट स्थान है बल्कि नाई नाइन, मालिन, धोबिन आदि का भी आवश्यक समावेश है। बिना इन सब के सहयोग और आशीर्वाद के यह कृत्य पूर्ण रूप से सम्पन्न नहीं हो सकते। यह अवश्य है कि इनके कारण एक जटिलता भी आगई है जिससे कोई कोई नवयुवक ऊब उठते हैं।

खुशी के मारे संस्कारों पर मंगल गान परम आवश्यक था और अब भी है। अभी तक बालिकाएँ सम्मिलित होकर ये गाने गाती हैं। इनको गाने की कोई शिक्षा विशेष कभी नहीं दी गई, केवल परम्परा से ये गाना सीखती आई हैं। इनके गाने के शब्दों में भले कहीं यतिभंग, छन्दोभंग आदि दोष दिखाई दें पर इनमें इतना माधुर्य भरा है कि उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। ये रस से ओत प्रोत हैं। इन गाने वालियों के परिश्रम को चाँदी सोने के टुकड़ों से नहीं तोला जा सकता। इन से तो अक्षुण्ण स्नेह का परिचय मिलता है। वही इसका मूल्य है। खेद है इन गीतों का स्थान आज चीं चीं करने वाले ग्रामोफोन के रेकार्डों ने अथवा कान फोड़ने वाले ध्वनि विस्तारक यन्त्र ने ले लिया है और माधुर्य को प्रायः बहिष्कृत कर दिया है। नगरों की सभ्यता गाँवों में भी छाई जा रही है। नगर का नवयुवक और नवयुवती, दोनों का कोई लगाव अब इन गीतों से नहीं है और संभावना यही है कि गाँवों की भी नई पीढ़ियाँ अब रेडियो और ग्रामोफोन की ही आश्रित होकर रहेंगी। यदि राष्ट्र का नेतृत्व कुछ

कला प्रेमियों के हाथ में हो तो पुरातन माधुर्य की रक्षा हो सकती है।

लोक साहित्य और लोक संगीत का पुनरुद्धार, विज्ञान के अत्याचारी पक्ष से पीड़ित यूरोप की जनता में किया जा रहा है। भारत में अभी पुनरुद्धार और पुनरुज्जीवन करने की समस्या नहीं है। अभी तो लोकसाहित्य और लोकसंगीत दोनों जीवित हैं, पर हैं मरणासन्न। यदि प्रोत्साहन और प्रश्रय दिया जाय तो अवश्य ही ये पनपकर फल फूल दे सकते हैं।

'कोकिल' जी के इन गीतों में से कुछ को मैंने उनके द्वारा गाए जाते सुना है। उनके सुर की मिठास अन्य अप्राप्य है, और यदि गीत में करुणा की या विछुड़न की भावना है तो आप उनके गाने पर अपने-आँसू रोक नहीं सकेंगे।

इस संग्रह का 'संरक्षण' मूल्य भी कम महत्व का नहीं। ये गीत छप कर सुरक्षित तो रहेंगे। संभव है, आज की पीढ़ियों को न सही, भविष्य के भारत की पीढ़ियों को लोकसंस्कृति और लोक संगीत के समुचित मूल्य और आवश्यकता का अनुभव हो, तब तो कोकिल जी के ऐसे ग्रन्थों का समादर होगा ही। भवभूति के शब्दों में कोकिल जी कह सकती हैं—

उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोपि समानधर्मा।
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

कोकिल जी के इस ग्रन्थ का मैं सादर स्वागत करता हूँ।

बाबूराम सक्सेना

विषय-सूची

१—प्राक्कथन ... ... क—ग

२—भूमिका ... ... १—५

(क) लोक साहित्य और वैज्ञानिक विचार धारा १—६

(ख) लोक संस्कृति पर एक विहंगम दृष्टि ७—१३

(ग) सामाजिक संगठन और उसकी परम्परा १३—१८

(घ) लोक गीतों का संगीत ... १८—२४

(ङ) विवाह ... ... २४—३०

(च) विवाह की रीतियाँ ... ३०—४०

(छ) आभार प्रदर्शन ... ३६—४०

(ज) लोक संगीत की शास्त्रीय समीक्षा ४०—५

३—आराधना के गीत ... १—२६

४—मंगल ... ... २६—४२

५—वर की खोज ... ... ४३—५७

६—वरण ... ... ५८—६६

७—निमंत्रण ... ... ७०—८२

८—सगुन ... ... ८३—६४

६—सुहाग ... ... ६५—११

१०—निकासी—सेहरा, बन्ना, घोड़ी ... १११—१२८
११—बिवाह—भांवर, गारी, बिदाई ... १२९—१५८
१२—वधू आगमन ... ... १५९—१६३
१३—सोहर ... ... १६४—१६८

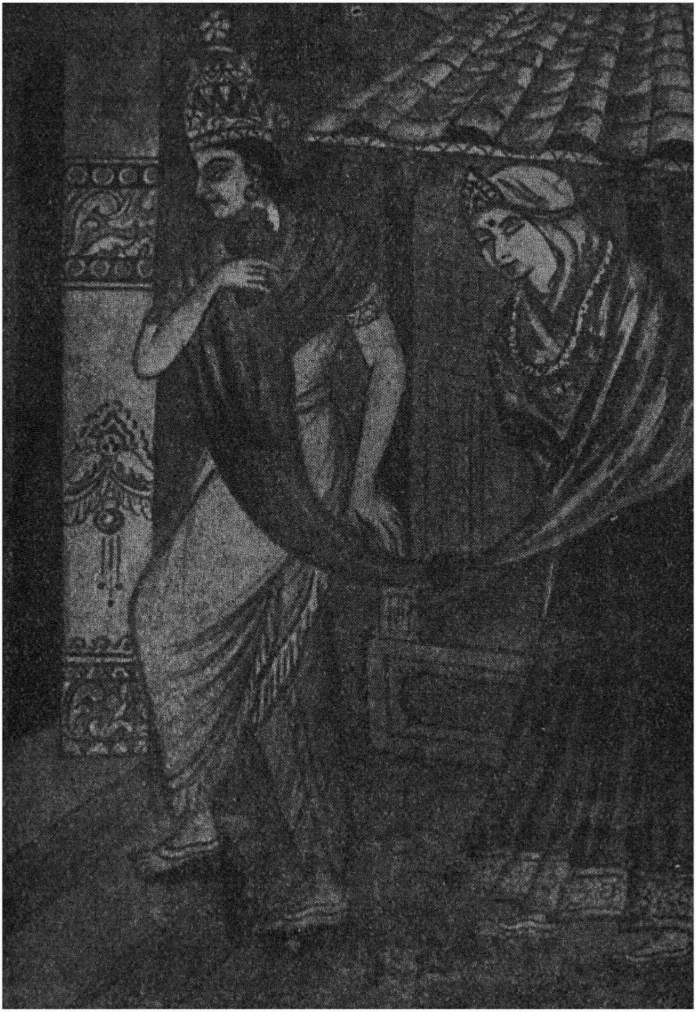

राजा रामचन्द्र बहुआ लेइ आएँ।
एहि रे अजोधिया में भए हैं अँजोर ॥

भूमिका

लोक-साहित्य और वैज्ञानिक विचारधारा

शैशव के संस्मरण लिखने नहीं बैठी हूँ पर साहित्य की तीन मंज़िलें बरबस याद आ जाती हैं। पहिली मंज़िल वह जब नवें दसवें दर्जे वाला ज्ञान आया। जब जो कुछ पढ़ती थी समझती तो कम थी पर आधुनिक लेखक की ख्याति के अनुपात में ही उस पर श्रद्धा हो जाती थी। हारी-थकी बुद्धि को लगता कि मैं तो कभी भी इस प्रकार नहीं लिख सकूँगी। अपने प्रति एक संकोच की भावना बढ़ती जाती। असमर्थता जैसे भीतर ही भीतर बड़ी पीड़ा देने लगी।

धीरे धीरे मेरी श्रद्धा उधर से हटी या तो वह दूसरी ओर मुड़ गई और दूसरी मंज़िल शुरू हुई। पहिले कालिदास फिर शेक्सपियर और अन्त में तुलसीदास जी मेरे साहित्यिक जीवन पर छा गए।

बचपन में आर्य समाजी वातावरण में पलने के कारण रामायण मुझे पढ़ने को ही नहीं मिली थी। अच्छा ही हुआ तब शायद वैसी श्रद्धा भी न जम पाती। पीछे जब मुझ में कुछ समझ आई तब तो रामायण में उसकी भावना की गहराई के कारण खूब श्रद्धा जमी। होते होते मेरी श्रद्धा घरों में संस्कार इत्यादि में गाए जाने वाले लोक गीतों पर हो गई। यह मेरी तीसरी मंज़िल थी। मैं आश्चर्य चकित रही और समझ न पाई कि मेरी यह दिशा विकासोन्मुखी थी या पतनोन्मुखी। अपनी इस अभिरुचि के कारण साहित्यिकों को ग्रामीण, प्रगतिशीलों को अप्रगतिशील और प्रयोग वादियों को मैं आधुनिकता-विमुख अवश्य ही लगती रही हूँ।

मैं इन लोक गीतों को बड़े रस के साथ गाती। पर गाती एक प्रकार से छिपकर ही, क्यों कि यह देहाती रुचि का परिचायक था। उस समय लोक-गीतों की सभ्य समाज में ऐसी चर्चा और आदर न था जैसा आज है। साहित्यिक मित्रों के कहने के अनुसार मेरी तुक-बन्दियों की भाषा और शैली ग्रामीण होती गई। मैं अपने को बहुत कुछ ग्रामीणता से बचाती पर मेरी जागृत अस्ति से परे उद्वेलित रागात्मकता मुझे पुनः उसकी ओर ढकेल देती। बात मेरे बस की न थी।

विज्ञान के इस शुष्क और नीरस युग में शायद पर्याप्त रागात्मकता हमें कहीं मिलती ही नहीं। जिस काल का ज्ञान जितना ही ऊँचा जाता है उस काल की रागात्मकता उतनी ही गहरी जानी चाहिए। आधुनिक साहित्य ने वैज्ञानिक साधनाओं और अन्वेषणों के इस युग में नवीन शैलियों को तो जन्म दिया पर इस भाव-रञ्जना के क्षेत्र में वह पीछे रह गया है। इसी से हमें पीछे जा कर इन लोक-गीतों में अपनी रसपिपासा शान्त करनी पड़ती है। अपने समय की दृष्टि से रामायण में रागात्मकता और ज्ञान का सम्यग समन्वय है। उसमें न नागरिक साहित्य के जैसा भाषा और शैली का बन्धन है और न लोक-गीतों के जैसी स्वच्छन्दता। फिर भी वह लोक साहित्य के उतना ही निकट होने की योग्यता रखती है जितना नागिरक साहित्य के। इसी लिए रामायण का इतना महत्व है।

नदी के कूलों को सजाया और सँवारा जा सकता है, पर समुद्र-तट की सजावट कैसे की जाय। उसके कगार किसके बस के हैं। लोक-साहित्य समुद्र की भाँति है जो किसी प्रांत में, प्रांत की सम्पूर्ण बोलियों में जीवन के प्रत्येक विषय पर, भावों की लहरों के अनन्त बहाव में, छन्दों के अगणित रोर में, संगीत की अजस्र मादकता में जिसके लेखक अविरल रूप से देश की गाथा को, संस्कृति को, गाया करते हैं, गाया ही करते हैं, बिना प्रशंसा की प्रतीक्षा किए-अनाम, अगोचर और अदृष्ट।

नागरिक साहित्य, जब भाषा की विशुद्धता, व्याकरण, छन्द और शैली की संकीर्णता से अपने को जकड़ लेता है और वह जकड़न जब फाँसी की दशा को प्राप्त हो जाती है तब उच्च साहित्य की सूख सरिता को यह लोक-साहित्य का, समुद्र ही बादलों में बरसकर पुनः जल-दान करता है। आज भी हमारी नागरिक भाषा के सामने कुछ ऐसे ही प्रश्न खड़े हैं।

हम आज अपने ही चारों ओर के दुख सुखों का सच्चा वर्णन नहीं कर पाते। क्योंकि हम बोलते और अनुभव करते हैं दूसरी बोली में और लिखने के समय हम एक विपरीत भाषा चुन लेते है।

देश के बड़े-बड़े विद्वान अपनी संस्कृति की एकता के रहस्य पर बार बार मुग्ध हो उठने हैं। विदेश के बड़े बड़े साधकों ने इस देश के धर्म तथा संस्कृति में निमग्न होकर अपने को कृतार्थ किया। देश से लेकर विदेशों तक इस हिन्दू धर्म और संस्कृति का अखण्ड राज्य है। देश के कुछ निवासियों ने हठधर्मी से धर्म अपना अलग चलाया सही पर इस संस्कृति से वे भी अछूते नहीं बचे। जिस धर्म और संस्कृति में हजारों शत्रु आकर और मिलकर अपने हो गये उस धर्म और संस्कृति को आज क्या खतरा है? यह मेरे हृदय का ही प्रश्न नही है यह आज सारे भारत का प्रश्न बन गया है। बड़े बड़े विद्वानों और कलाकारों को मैंने विज्ञान पर क्रोध उतारते देखा है। उनका मत है कि यह वैज्ञानिक सभ्यता ही हमारी संस्कृति के सर्वनाश का कारण है। जैसे विज्ञान का आगमन विकास क्रम की स्वाभाविक दशा नहीं है अपितु कोई आकस्मिक घटना है। क्या विज्ञान दीनों दरिद्रों के विचूर्ण अरमानों की पुकार नहीं है? क्या विज्ञान असफल श्रमिकों के आर्तनाद से आई हुई नैसर्गिक सहायता नहीं है? क्या विज्ञान इतिहास, राजनीति और समाज के महा असंतुलन के भैरव गान के बाद नवनिर्माण के सामञ्जस्य का लास्य गान नहीं है? क्या विज्ञान् नाना धर्मों के बढ़ते हुए विकराल नागों के लपेट लेने वाला शिव नहीं है?

क्या विद्वानों और कलाकारों की कल्पना के अनुसार विज्ञान् का ध्येय युद्ध और स्वार्थ-परता ही है ? क्या विज्ञान का जन्म आपस के स्वार्थयुद्ध के लिये या इन्द्रियों के भोग विलास के लिए ही हुआ है ?

तो क्या यह विज्ञान संस्कृति में कोई नई आई हुई वस्तु है। क्या यह भी उतना ही परम्परागत नहीं है जितना हम वेदों को मानते हैं। इन सारे प्रश्नों का रहस्य एक उत्तर में साफ़ हो जाता है और वह उत्तर है केवल साहित्य के गर्भ में। भारतवर्ष संगीत तथा साहित्य प्रधान देश है उस साहित्य और संगीत में सदा से ऊँची दार्शनिकता की परम्परा का विकास होता आया है। भारतवर्ष का इतिहास भूगोल और समाजशास्त्र सभी कुछ रागात्मकता के माध्यम से ही जीवित और जाग्रत रक्खा गया है। उस भारतीय परम्परा ने ही भारतीय संस्कृति में इतनी रंगीनी दी है। यह रागात्मकता ही किसी देश के जीवन के सामंजस्य की परिचायिका है। भारतीय जीवन जिन सुगन्धि तथा दुर्गंधि पूर्ण गलियों तथा ऊबड़-खाबड़ रास्तों से होकर गुजरा है उसका ज्ञानात्मक ढंग पर करीब करीब सम्पूर्ण इतिहास सँजोया जाता रहा है। पर जिस प्रकार सूर्य गगन मंडल में चौबीसों घण्टे तप कर हमें धन-धान्य और जीवन देता रहता है और उसकी कीर्ति गाथा कभी नहीं गायी जाती उसी प्रकार वह महान रागात्मकता जिसने इस महान् भूखण्ड को डुबो रक्खा है, जो जहाँ-तहाँ और जब कभी चमकने वाले विद्वत्-साहित्य रूपी नक्षत्रों को प्रकाश देता है, जो गली कूचों, गाँव शहरों, पर्वतों और वादियों में एक ही रूप से धावित हो रही है, उसकी यश गाथा किसी ने कभी भी नहीं गाई। आज सैकड़ों वर्षों की गुलामी से प्रपीड़ित और नए जीवन की चका-चौंध से बौखलाया हुआ मानव अपनी दैनिक समस्याओं में इस गलत तरीके से उलझा पड़ा है कि उस अनन्त गान को भूल गया है। बड़े-बड़े मिलों और कारखानों ने नागरिक होने की

चाट तो उसमें पैदा कर दी है, पर वह व्यापक और नवीन रागात्मकता जिसकी इस अपार नीरस शुष्क और कठोर विज्ञान युग में आवश्यकता है शुद्ध नागरिक साहित्य के वश की बात नहीं है। इसीलिए सरस और घन कुंजों वाले कूल किनारे उजड़कर बालुकामय देश होते जा रहे हैं। अपनी ही व्यथा और दुख कहने को हमारे पास वाणी भी नहीं है। चोट पड़ने पर हम बोलचाल की भाषा में आहें भी नहीं भरते। उसके लिए भी एक कृत्रिम भाषा का उपयोग करते हैं। संस्कृत के शुद्ध रूपों को अस्वाभाविक तरीके से भरना मृत भाषा को पुनः जीवित करने का असफल प्रयत्न है। संस्कृत शब्दों का असंख्य भंडार जो लोक भाषाओं द्वारा जीवन से तरल और भावना संगीत से स्वरित होकर देश भर में युगों युगों से तरंगित होता चला आ रहा है उसको स्वीकार न करना अपनी संस्कृति का ही तिरस्कार करना है।

लोक गीतों की यह परम्परा शायद उतनी ही पुरानी है जितना पुराना भारत का साहित्य। विद्वानों के मत से वेदों, शास्त्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हमें गाथाओं के संस्कारों इत्यादि में गाये जाने के उदाहरण मिलते हैं। इतिहास को संगीत और साहित्य के सामंजस्य ने अमर तो बनाया ही पर उसके साथ ही उसे ऊँचा भी उठा दिया। अमरत्व महानता के बिना कैसे ठहर सकता था। और इन विचारों की महानता ने ही दार्शनिकता को सार्वजनीन कर दिया। कहना न होगा कि ये राम कृष्ण और शिव, इतिहास की उतनी देन नहीं हैं जितनी साहित्य की। कला सर्व सुन्दर है, सर्व शिव है, सर्व सत्य है। कला अमर है। इतिहास के राम तो दो सौ चार सौ वर्ष बाद समाप्त ही हो जाते पर साहित्य के राम अमर हैं।

इन महापुरुषों की कीर्ति को अमर करने में विद्वत साहित्य का भी बहुत कुछ हाथ है पर इस रामत्व और कृष्णत्व के ईश्वरत्व को साधारण मानव के जीवन में प्रवेश कराने में इन लोक गीतों का ही पूरा हाथ है। रामायण महाभारत काल के बाद नित नव आक्रमणों से जर्जरित

इस देश को जब ऊँचे साहित्य की देन बन्द हो गई थी उस समय अपभ्रंश से चारों ओर फैलती हुई अनेक प्रान्तीय भाषाओं में इस लोक साहित्य ने अपनी संस्कृति को जिस प्रकार चुपचाप रक्त माँस देकर सींचा है उसकी सराहना वर्णनातीत है। उस भयाकुल और पतित काल में निरक्षरों के बीच इन लोक गीतों ने जिस प्रकार साहस और निर्भीकता का संचार किया है उसकी कथा अपने पिछले इतिहास में कुछ कम सराहनीय नहीं है। इन अपढ़ भारतीय नर और नारियों ने सरल और सरस भाषा में मन के स्वाभाविक उद्गारों को जिस प्रकार एक मुख से दूसरे मुख तक पहुँचाकर अपने आदर्शों का प्रचार तथा सब रसों का संचार करके जो देश का कल्याण किया है वह साहित्य के लिए तो एक दिशा दिखा ही रहा है पर वैज्ञानिक विचार धारा का इसने महत्व पूर्ण अंग पूरा किया है। वैज्ञानिक विचार धारा को जिस सांसारिक रागात्मकता की आवश्यकता है उसके लिए इस लोक साहित्य ने एक दिशा बना दी है। विज्ञान ने रहस्य को उद्घाटित करके ईश्वर की श्रद्धा का मनुष्य में आरोप किया है। पर वह स्थिति बिना रागात्मक बने कभी स्वीकृति की वस्तु नहीं हो सकती। आधुनिक काल की नब्ज़ टटोल कर नागरिक साहित्य ने बहुत कुछ गरीबों और श्रमिकों का रोना रोया और उसे ऊँचा उठाया है किन्तु रागात्मकता की श्रद्धा वाला पुट उसे नहीं दे पाए। उसकी आस्था अभी संस्कार नहीं बन पाई है।

वह केवल बुद्धि की वस्तु है। हमारी यह दुर्बलता ही आज हमारी संस्कृति का खतरा बन गई है। हमारी श्रद्धा और आस्था का दीवालियापन ही आज हमारे धर्म का काल बन गया है।

मुझे विश्वास है कि इस देश के नर नारी यशलिप्सा और नाम की चिन्ता छोड़कर फिर भारत के कोने-कोने को अपनी आत्मा के गीतों से गुंजा देंगे। और उनकी नव्य भव्य रागात्मकता से हमारी नव संस्कृति का विकास होगा। मुझे यह भी विश्वास है कि यह नव संस्कृति अपनी

नई रागात्मकता द्वारा ही स्वदेश के अतिरिक्त अन्य देशों को भी मोहने वाली होगी और उसकी कीर्ति विज्ञान की कीर्ति के साथ अमर होती जायगी।

लोक संस्कृति पर विहंगम दृष्टि

सैकड़ों वर्षों की लगातार अज्ञानता, अन्धता और गुलामी के पश्चात आज हमारा देश जगा है तो वह देखता है कि हमारे यहाँ की विचार धारा और उसके मूल्य ही बदल गये हैं, युग ही बदल गया है। जब हम अपनी पुरानी सांस्कृतिक अमूल्य निधियों की याद करके पीछे घूम कर देखते हैं तब पता चलता है कि न जाने उसमें कितनी सम्पत्ति तो विनष्ट हो चुकी है और कितनी सम्पत्ति ऐसे ही पड़ी है जिसे हम अपने अथक परिश्रम से ही काम के योग्य बना सकते हैं। कहीं कहीं लोग उसको खोदकर फेंक ही देना चाहते हैं पर हमारे संस्कार ऐसे दृढ़ हैं कि मानों सांस्कृतिक नींव बदल ही नहीं पाती। यही नहीं अपने पतन काल में भी कुछ अमूल्य वस्तुओं का उसी नींव पर हमने नव निर्माण किया था। हमें आश्चर्य होता है कि अपनी सुप्तावस्था और अज्ञानता की दशा में भी हमने इतना विशद और महान् सांस्कृतिक निर्माण कैसे किया? आज इस नव जागरण के प्रभात में हम अपनी उन निधियों को देख पा रहे हैं। उनमें सबसे बड़ी देन हमारे प्रान्तीय भाषाओं में गाये जाने वाले लोक गीत हैं। जो घर घर में बड़े उत्साह से गाये जाते हैं। ये विभिन्न प्रान्तीय भाषायें जैसे-भोजपुरी, अवधी, मैथिली मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी इत्यादि प्रत्येक स्थानों में जनता के आत्मानुभवों की सरस अभिव्यक्तियाँ हैं। स्त्रियाँ संस्कारों में मधुर स्वर से जब गाती हैं अपने स्वर और शब्दों से अन्तर भावना का चित्र उतार लेती हैं। गाते समय एक समा बँध जाता है। इन गीतों में व्यक्ति के हृदय की अनुभूति और वेदना को 'वाणी दी गई

है। यह गीत व्यक्तिवादी कहाँ समाजवादी ही अधिक हैं। ऐसा लगता है कि इन में व्यक्ति का इतना संस्कार हो चुका है कि उसकी गति समाजोन्मुखी हो गई है। इन गीतों को भारत भर मे मेलों, संस्कारों व पर्वों इत्यादि पर गाने की प्रथा है। विद्वत् मंडली में आजकल लोक-गीतों की चरचा सब कहीं सुनाई पड़ने लगी है। अनेक विद्वान इनके एकत्रित करने में भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। सबके नाम तो न ज्ञात ही हैं न प्रकट हो पर कुछ के नाम लिये जा सकते हैं। श्रद्धेय रामनरेश त्रिपाठी ने अथक परिश्रम करके अगणित संख्या में लोकगीत एकत्रित किये हैं। डाक्टर सत्येन्द्र तथा कृष्णदेव उपाध्याय जी ने ब्रज साहित्य तथा भोजपुरी में विशेष अध्ययन करके अपनी अनुपम गवेषणाओं से हिन्दी साहित्य को एक अनूठी भेंट प्रदान की है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने जीवन के बहुत से अमूल्य वर्ष गाँव-गाँव नगर नगर इन गीतों की खोज में बिता दिये हैं। इस प्रकार एक रत्नों का अनुपम भण्डार तैयार हो गया है। ऐसे महापुरुषों की साधना के बाद इस अल्प पुस्तिका की कोई आवश्यकता न थी। पर यह पुस्तिका विवाह के लोक गीतों का यों ही किया हुआ संकलन नहीं है इसमें हमने क्रम से विवाह में होने वाली सभी रीतियों तथा प्रत्येक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों का संकलन किया है। इसमें साधारण जनता को यह लाभ है कि स्त्रियाँ विवाह संस्कार में प्रत्येक अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को एक स्थान पर प्राप्त कर लेंगी। कुछ गीत अपनी शुद्ध तथा स्वाभाविक गाने की ध्वनियों के साथ दिये गये हैं जिनके आश्रय पर प्रायः सभी गीत गाये जा सकते हैं। अधिकतर अवधी भाषा के गीत हैं। गाने का ढंग भी ऐसा ही है जिस ढग पर लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस और फैज़ाबाद इत्यादि में गाया जाता है। इनमें भाषा का उतना विचार ही नहीं रक्खा गया है जितना भावों का। बिना गाये इन गीतों में बहुत कम आकर्षण रह जाता है। इन विवाह के गीतों में यद्यपि स्वरों की विभिन्नता अधिक नहीं मिलेगी पर गाये जाने के ढंग

और ध्वनि में प्रत्येक गीत अपनी एक विशेषता रखता है। भिन्न-भिन्न भावनाओं के साथ उपर्युक्त ध्वनियों की एक अलग ही छटा है। यदि कोई ध्यान से उन्हें सुने तो यह जानना कठिन हो जाता है कि वह संगीत है जो वातावरण को सजीव बना रहा है या शब्द योजना। दोनों एक दूसरे से अभिन्न जान पड़ते हैं एक दूसरे से दोनों का अस्तित्व है। ये सृष्टि के स्वाभाविक गान हैं। ये लोक गीत उस स्वस्थ विश्वास पर आधारित हैं जिस विश्वास पर विधना ने इस सृष्टि की रचना की होगी जिस प्रेरणा से विवश होकर अगोचर ने अपने को विभिन्न रूप से प्रकट किया होगा। लोक संस्कृति उसके विभिन्न रूपों की विनत उपासिका है। यही कारण है कि लोक साहित्य ने जीवन के किसी विषय को नगण्य नहीं समझा, किसी रस को अछूता नहीं छोड़ा। उसने इस मायामय संसार में ही सार और स्नेह पाया है। उसने इस नश्वरता में ही स्वर्ग का आनन्द बहाया है। संयम, साधना और नियंत्रण में उसकी पूर्ण श्रद्धा है। इस तप से उसने समस्त विषयों में रस संचार करने की सामर्थ्य पायी है और "सबै भूमि भगवान की" जैसा विश्वास लेकर सब विषयों को उर्वर बनाया है।

इन गीतों को संस्कारों में गाने की प्रथा धीरे धीरे उठती ही जा रही है। रसहीन और भावहीन आधुनिक चटपटे गीत उसकी जगह लेते जा रहे हैं। नयी पीढ़ी के लोक-गायकों ने या तो इन गीतों का कलेवर बदल डाला है और या तो दूसरे गीतों की रचना कर डाली है। इनमें नागरिकता का पुट स्वरों, शब्दों और शैली के द्वारा आ गया है। नागरिकता तो कोई असाहित्यिक वस्तु नहीं हैं, पर गहराई जो उनमें नहीं है, रस जो उनमें नहीं है इसी से रस प्रेमियों को वे नीरस लगते हैं। आजकल सिनेमा के गीतों और ध्वनियों को पसन्द करने की एक सहज प्रवृत्ति हो गई है। यद्यपि इन गीतों ने शास्त्रीय संगीत को कुछ स्वाभाविकता और सरलता प्रदान की है पर ये अधिकतर हल्के और सस्ते प्रकार की मनोवृत्ति को ही उत्तेजित करते हैं।

यह प्रवृत्ति असंयम विलासिता और मज़े की है। ये विकृत भावना को उकसाने वाले विचार हैं। इस प्रकार की धुनें और गीत विवाह जैसे गम्भीर संस्कार के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। विवाह के पीछे जो जीवन की अथक तपस्या और साधना की परम्परा चली आ रही है इन ध्वनियों तथा गीतों द्वारा उसका मजाक सा उड़ना ही सम्भव है। हमारा पुरातन इतिहास अपनी थाती लिये भारी चरणों से बढ़ता हुआ हमारे इन लोक गीतों में ही विश्राम लेता है। साहित्य वही है जो सांस्कृतिक भावनाओं में विकास करे, रागात्मकता भरे। उसे छिन्न भिन्न करके फेंक न दे।

स्वतंत्रता के नव जागरण में आवश्यकता थी कि अपनी खोई हुई संस्कृति को पीछे घूमकर देखा जाय आगे आने वाली संस्कृति की कड़ी से उसकी कड़ी जोड़ी जाय इसी दृष्टिकोण से स्त्रियों की सुविधा के लिये विवाह संस्कार की प्रत्येक रीति पर गाये जाने वाले गीतों को एक जगह एकत्र करके पुनः उनकी प्राण प्रतिष्ठा की गई है। साथ ही उन रीति रिवाजों में विधियों का भी निर्देश पूर्ण रूप से किया गया है। प्रत्येक स्थान की समान रूप से प्रचलित रीतियाँ ही ली जा सकी हैं। इस युग के गति-प्रिय समय में उन महत्वपूर्ण रीतियों का चुनना ही उपयुक्त समझा गया है जो हमारी संस्कृति की आधारभूत पीठिका कही जा सकती हैं। हाँ एक ही ध्यान रक्खा गया है कि विवाह संस्कार की परंपरागत पवित्रता, गंभीरता, और कला पूर्णता नष्ट न होने पावे। इसके द्वारा विकास क्रम में आने वाले नये साहित्यिक परिवर्तनों की सीढ़ी पर हम स्वाभाविक सर्वाङ्गीण रूप से अपने पैर धर सकें, और आगे आने वाले साहित्य से इन लोक गीतों की कड़ी जोड़ सकें। जिससे हम लोक गीतों की व्यापक शैली का खड़ी बोली में भी प्रयोग कर सकें। इस प्रकार हम चाहें तो शीघ्र ही खड़ी बोली में शैली का दुर्भिक्ष मिट सकता है।

असल में यह लोक है क्या ? यह गाँव या गाँव की जनता मात्र ही नहीं है यह वह साधारण जन है जिसका धर्म हृदय से उद्भूत होता है। जिसके जीवन को ज्ञान का प्रकाश नहीं मिला है। अपितु प्रेम की उनीदीं रात में वह पलता है। इस लोक को हम मानवता का हृदय कह सकते हैं। नागरिकता एक बुद्धि प्रधान, विवेक प्रधान वस्तु है। बुद्धि जहाँ प्रधान होती है अभिव्यक्ति में एक प्रकार की ऋजुता आ जाती है। कल्पना सीधी और सरल न होकर चक्करदार हो जाती है। प्रणय हो, स्नेह हो, या व्यंग हो वह लोक लाज और भले बुरे के फेर में इस प्रकार खो जाता है कि भाव व्यंजना लुप्त हो जाती है। लोक गीतों में कोई भी भाव बड़े ही स्वाभाविक रूप से व्यक्त कर दिये जाते हैं। जबकि सभ्यता के फेर में कोई भी भाव अवर्णनीय, अस्पष्ट, मुरझाया हुआ तथा रुग्ण सा प्रतीत होता है। जिस प्रकार विचार की गुत्थियाँ अनुभव से ही सुलझती हैं उसी प्रकार अभिव्यक्ति को लोक भाषा सरल बना देती है।

यह लोक आदि काल से ही चला आ रहा है। सारे संसार पर इसका साम्राज्य है। आदिकाल से ही भारत में ऋषियों की परम्परा के कारण दार्शनिक विचारों का प्रभाव अधिक रहा। इस परम्परा के कारण त्याग और संयम विशेष रूप से भारतीय जीवन की रीढ़ बन गये। इसका फल यह हुआ कि राष्ट्रीय दृष्टि से घोर निराशाओं और भयंकर प्रलयों के युग में भारतीय जनता की जीवन धारा अक्षुण्ण बनी रही। हमारे इतिहास की इस विशेषता के निर्माण में लोक जीवन में दार्शनिकता का पुट बनाये रखने में लोक गीत और उनकी रागात्मक शैली का बहुत बड़ा हाथ है। (यह लोक गीत वैदिक काल से ही प्रवाहित हो रहे हैं। वैदिक काल में भी गाथाओं का वर्णन मिलता है। यह गाथाएँ विवाह आदि संस्कारों में गाई जाती थीं।)

प्रत्येक काल में शास्त्रीय भाषा और लोक भाषा में कुछ न कुछ अन्तर मिलता है। शास्त्रीय विचार और भाषा जब

कर्म काण्डों और व्याकरण के कटघरे में बन्द कर दिये जाते हैं तब लोक भाषा और विचारों को फलने फूलने का मौका मिलता है। वैदिक धर्म के बाद बौद्ध धर्म का आना कुछ इसी प्रकार का था। बौद्ध धर्म की भाषा अधिक लोकोन्मुखी और विचार आडम्बर शून्य थे। यह धर्म शास्त्रीय कम और अनुभव जन्य अधिक था। फिर भी यह वैदिक धर्म का ही एक अगला चरण कहा जा सकता है।

दूसरा लोक प्रिय धर्म पुराणों का धर्म है। पुराणों का भी वेदों से कोई मौलिक भेद नहीं है। पुराणों की अलौकिक कल्पना शक्ति ने लोक कथाओं का एक ऐसा अनन्त जाल बिछा दिया जिसमें उलझ जाने से बड़ी से बड़ी समस्या भी सुलझी हुई लगने लगती है।

फिर भारत को महाभारत के निर्माता वेद व्यास जैसा अपूर्व साधक मिल गया है। महाभारत की कथाओं में धर्म की गति बँधी हुई नहीं है वह मुक्त नदी की भाँति बह रहा है। कहा गया है कि महाभारत और अष्टादश पुराण के पढ़ लेने से मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। इस अर्थ में एक सत्य है कि इसके पढ़ने से मनुष्य के जीवन में सर्वांगीणता आ जाती है। साधारण जन को विश्वासों और आदर्शों की अनन्त निधि मिल जाती है। साहित्यकार को अखण्ड रीति से कथा कहानियों का जाल बिछा हुआ मिल जाता है कवि को कल्पना की ऊँची उड़ान मिल जाती है, वैज्ञानिक को रागात्मकता का अपार सागर मिल जाता है। वेद शास्त्रों से लेकर पुराण महाभारत और रामायण तथा आज तक के लोक गीतों में भीतर ही भीतर एक अखण्ड सांस्कृतिक सूत्र का पता लगता है। मनुष्य के मानसिक और कलात्मक विकास ही में सब सीढ़ियाँ मालूम होती हैं। पंडित यदि हृदय वान होकर इन सीढ़ियों पर एक एक करके चढ़ें और उनकी दशा का पूर्ण दर्शन प्राप्त करें तो भारत के

विचार धारा के विकास क्रम का सुन्दर चित्र वे अपनी आँखों के सम्मुख पायेंगे। भारत ही क्या इस प्रकार वे संसार के विकास क्रम की दिशा जान सकेंगे।

इतिहास वेत्ता धर्म वेत्ता और राजनीति वेत्ता जिस काल को, जिस सहस्राब्दी को भारत का अंधकार काल मानते हैं उस समय किस प्रकार लोक भाषाओं के द्वारा इन अपढ़ भारतीयों ने संस्कृति की रक्षा की है यह देखते ही बन पड़ता है। जिस समय अपभ्रंशों से छन छन कर सन्तों की वाणी में हिन्दी का परिपाक तैयार हो रहा था, उस समय भी लोक गीत प्राकृत की नव मिठास से, अनुभवों के नव शृंगार से नई सरसता भर रहे थे। लिखित साहित्य पर, धर्म विरोधी राजे महाराजे रोक लगा सकते थे पर मौखिक साहित्य पर कुछ रोक नहीं हो सकती थी। इस प्रकार अपनी मानवता, सरसता, मधुरता और स्वाभाविकता से लोक साहित्य पनपता गया।

सामाजिक संगठन और उसकी परम्परा

जहाँ समाज है त्याग की परम्परा है। प्रत्येक देश की नींव त्याग पर पड़ी है। पर इन भारतीय लोक गीतों से तो ऐसा लगता है कि भारतीय संस्कृति में व्यक्ति का अपने लिए कुछ रह ही नहीं गया था। किसी गीत का अन्त ऐसा नहीं है कि संयम को तोड़कर किसी ने सामाजिक विधान में धक्का लगाकर अपनी विजय मनोवैज्ञानिकता या किसी दार्शनिकता का बहाना करके प्राप्त की हो। नहीं कहीं भी किसी भी कठिन से कठिन सामाजिक विधान से ऊबकर भी व्यक्तिगत कामना के कारण संयम ने अपना माथा नहीं टेका। बेटी कहती है—'मैं इतनी सुकुमार और गुणवान तुम्हारी बेटी हूँ बाबा, मुझे गोरा ही वर ढूँढ़ कर लाना" बाबा कहते हैं "बेटी मैं चारों दिशा छान चुका तुम्हारे योग्य वर नहीं मिला अब तुम क्वारी रहो। बेटी उदास हो जाती है। माता जब उससे पूछती है कि "बेटी मेरी उदास क्यों है?" कारण सुनकर

वे प्यार से समझा कर कहती हैं "बेटी तुमने देखा तुम्हारी दादी गोरी, और बाबा साँवरे हैं, मैं गोरी हूँ बाबू साँवरे है, राधा गोरी थी श्रीकृष्ण साँवरे थे, और बेटी कृष्ण जिस समय बाँसुरी बजाते थे सारे संसार को मोह लेते थे। कौन ऐसी अभागी बेटी होगी कि इस महान् आदर्श से परास्त होकर मुरली की तान सरीखे गुणों पर मुग्ध हो सब कुछ न भूल जाय।

फिर बिदा होते समय बेटी रोकर कहती है 'मैं तो अभी बड़ी अल्हड़ हूँ वहाँ पर मुझसे यदि कुछ काम न बन पड़ेगा तो मैं क्या करूँगी और यदि वे लोग तुम्हें कुछ ताने देंगे तो भी मुझसे कैसे सहा जायगा' ? तब माँ आँसू पोंछकर भर्राए कंठ से कहती है—

सीखि लेहु बेटी रे गुन अवगुनवा
सीखि लेहु राम रसोईं
सास ननद तोरी मइया गरियावैं
लै लिहेउ अँचरा पसारि।

बेटी गुणो को सीख लेना और तुम्हारे माँ बाप को जो कुछ भी तुम्हारे घर के लोग कहें चुप होकर अँचरा पसार के उसे ले लेना। किसी सुन्दर स्त्री को देखकर कोई मन चला रोक कर पूछता है 'क्या बेचती फिरती हो आओ हमारे महल में रहना अच्छे अच्छे भोजन वसन और सोना चाँदी पहरना'। वह कहती है 'मेरा कोयरी तुमसे बहुत सुन्दर है उसकी भुजाओं में बँधकर और अरहर की टटिया देके टुटहे घर में सोने में जो रस है तुम्हारे महलों में कहाँ मिलेगा'। जीवन का यह महायज्ञ बिना किसी विघ्न बाधा के कट जाता है। इन लोक गीतों की संस्कृति में कोई न समाज में तलाक थी न कोई दूसरा उपाय ही, पर इन्हीं अखण्ड विश्वासों के द्वारा सारा जीवन आनन्द से कट जाता है। व्यक्ति समाज में मानों खो गया है। प्रत्येक गीत में कहीं सास कहीं

ननद कहीं पति है और उसकी सौत है। यह अवश्य है कि इस त्याग की चरमसीमा स्त्री के सतीत्व के द्वारा ही पहुँचायी जाती है। स्त्री ही जैसे इस त्याग तपस्या और सत्व का केन्द्र है।

घर के, परिवार के, गाँव के तथा प्रकृति के साथ जो घना सामञ्जस्य स्थापित किया गया था "वह अनुपम था। विवाह इत्यादि में ननँद का कलस गोंठना, भाई का चौक लाना, सरहज का ब्राती मिलवाना कन्या के भाई का लावा परछना इसी प्रकार परिवार के सभी स्त्री पुरुषों को उनके सम्मान के उपयुक्त कोई न कोई रस्म उन्हें करनी पड़ती है जिससे विवाह में अपने अस्तित्व की आवश्यकता नाऊ बारी से लेकर राजा भी उसी परिमाण में समझता है। जिस प्रकार आकाश में तारे अपने-अपने स्थान पर अपना कार्य करने में गौरव समझते हैं उसी प्रकार इस सुसंगठित भारतीय समाज के छोटे मोटे परिवार के ये लोग अपना कार्य संगठित रूप से संचालित करते हैं।

व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख में तो कभी उस साधना का अन्त होने ही नहीं पाता। समुद्र की लहरों की भाँति जैसे इस त्याग की दिशा अनन्त है। जैसे लहरों के बाद लहरों का कोई अन्त नहीं वैसे ही त्याग के बाद त्याग का कोई अन्त नहीं। इस संस्कृति को कूल किनारा नहीं चाहिए।

भाई बहिन का प्रेम, पति पत्नी का प्रेम, देवर भौजाई की चंचलता, सास की श्रद्धा, पड़ोसिन. परिवार वालों तथा नाउन, बारिन, कहारिन के प्रति आदर सत्कार पशुओं और पेड़ों तथा प्रकृति के साथ आत्मीयता "वसुधैव कुटुम्बकम' का छोटा मोटा पर ठोस उदाहरण सामने रखता है।

व्यक्ति का बलिदान ही समाज है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति का अकेले जैसे कुछ मूल्य ही नहीं है। नारी जब पुरुष के संसर्ग

में आती है, वधू जब सास ननद और जेठ देवर के संसर्ग में आती है, बहिन जब भाई भतीजों के संसर्ग में आती है मानों तभी जब क्रोध ईर्षा द्वेष दुलार मनुहार और प्यार से संघर्षित होते हैं, मानो तभी व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है, मानो तभी उनमें से एक उन्मत्त रस का स्रोत बहता है। जो शायद इन नवों रसों को छा लेता है। वही रस शायद उन लोक गीतों की आधार भूमि है।

इन संघर्षणों में सबसे अधिक देर तक ऊपर तक ठहरने वाली यह नारी ही है जो अपनी इस जीवट के कारण संसार का और सृष्टि का रहस्य बनी है। यह जीवन की घनी संलग्नता ही उसे सारे संघर्षणों के ऊपर विजयी बनाने का आदेश देती है। यदि हम कहें कि हमारी संस्कृति का केन्द्र यह नारी ही है तो बहुत असंगत नहीं होगा।

क्या यह गलत है कि समाजवाद की नींव हमारे देश में कभी की पड़ चुकी है। एक छोटे पैमाने पर हम इसे बड़ी सफलता से स्नेह के रास्ते चला चुके हैं। आज भी हममें खरी तपस्या और साधना हो तो उसी को राष्ट्र के रूप में हम निश्चय बढ़ा सकते हैं। वह समय विज्ञान का नहीं था यातायात की सुविधायें नहीं थीं। हमारे पास संयम और साधना की अपार निधि जो है इससे हम आज निस्सन्देह अखण्ड ज्योतित रागात्मकता का निर्माण कर सकते हैं।

यदि हमारे यहाँ ये साहित्यकार इस अनदेखी लोक संस्कृति की ओर सहृदयता से देखें तो उपन्यासों में, पराजित होकर पात्रों की मृत्यु या ऐसी ही अनहोनी घटनाओं की आवश्यकता उन्हें न पड़ेगी। हल्की और थोथी रागात्मकता की जगह निर्लेप प्रेम ले लेगा।

इस विषय को हम फिर कभी अपनी दूसरी पुस्तक में विस्तार से देंगे। यहाँ इतना ही कहना है कि इन लोकगीतों की आत्मा को समझने के लिए हमें अपने समाज की इस पूर्व व्यवस्था के साथ एक सहृदयता होनी चाहिये।

विवाह की क्रिया ही इस संगठन को पुनर्जन्म देती है। वरकन्या के द्वारा हम एक नए केन्द्र का निर्माण करते हैं। यह नन्हा सा बीज पुनः अपने सांस्कृतिक विश्वासों को लेकर, अपनी सामाजिक परम्पराओं, आपसी व्यवहारों तथा दार्शनिकता को लेकर वट-वृक्ष की भाँति सहस्र शाखाएँ फैलाकर समय पाकर सघन छायाप्रद वृक्ष हो जाता है। इसका इतिहास भी मनुष्य के जन्म इतिहास की ही भाँति है। जिस प्रकार होनहार पुरुष की अनेक शक्तियाँ बीज में ही तो सीमित रहती हैं। इस बीज से ही जिस प्रकार संस्कृत और स्वस्थ तथा सुन्दर स्त्री सुन्दर और सस्कृत सन्तान को जन्म देती है इसी प्रकार यह सामाजिक संगठन का विशाल वट वृक्ष संस्कृति की सुगठित और सुन्दर भूमि में जन्म लेता है। इसका बीज वही वर और कन्या हैं। विवाह है इसकी जन्म तिथि।

कन्या पक्ष के लोग ही प्रसूता स्त्री का स्थान लेते हैं। प्रसव की सम्पूर्ण पीर उन्हीं के हिस्से में आती है।

यह केवल शरीर से शरीर मात्र का जन्म नहीं है। यहाँ समाज से नव सामाजिक सम्बन्धों का जन्म होता है। कन्या पक्ष वाले कन्या के विवाह स्वरूप मानो बीज रूप में सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को बिन्दुरूप गर्भ में धारण कर उसे मांस मज्जा दान करते हैं। भारतीय परम्परा की जड़ न जाने समाज के भीतर कितनी गहरी चली गई है। विवाह में केवल वर से ही हम सम्बन्ध नहीं स्थापित करते अपितु वर के सम्बन्धियों मित्रों और न जाने किस किससे हम यह सम्बन्ध जोड़ते हैं। देन लेन की रीतियों के साथ यह सम्बन्ध बहुत दूर तक जुड़ा है और उसके प्रतिफल उन सबों का आशीर्वाद जो वरवधू पाते हैं इससे वे चिर सुहागवान होते हैं। पाठक इस प्रथा का दहेज के साथ न जोड़ें उससे और इससे कुछ सम्बन्ध नहीं। ये तो सुहाग की वस्तुएँ

बहुत सस्ती होती है जैसे चूड़ी, सिन्दूर, बेंदी और चोली इत्यादि। ऐसी ही वस्तुएँ शकुन मानी गई हैं। शेष के लिये सामर्थ्य के अनुसार कुछ भी बढ़ाया जा सकता है। फिर अनेकों नेग चार बने हुए हैं जिनके बन्धन से सारे सम्बन्धी और पुरखे बँध कर अपने अपने स्थान की शोभा बढ़ाते हैं और इस समाज रूपी उपवन को फूलों की भांति अपने आशीर्वाद और शुभ कामनाओं की सुगंधि से महकाते हैं। उन्हीं की सहायता से वह नवदम्पति रूपी नन्हा सा वृक्ष वट वृक्ष की विशालताको प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। जो बढ़ कर अपने माता पिता की ही भांति महान छाया को देने वाला होता है। धन्य हैं ये कन्या पक्ष वाले जो अपने सतत् योग और महान संयम से इस जन कल्याणकारिणी छाया का मूलकारण बनते हैं। धन्य है सुहाग का वह युग युग व्यापी, चढ़ कर भी न उतरने वाला नशा जिसके मद में हम जीवन के नारकीय कष्टों को भी सह लेते हैं।

लोक गीतों का संगीत

जो कुछ व्यक्ती करण भाषा की शक्ति और सामर्थ्य के परे है वह नाद और ध्वनि से सम्भव होता है। इसी नाद से सारे स्वर व संगीत बने हैं। यह एक प्रकार से कहने का ढंग हैं। यहाँ शब्द का अर्थ नहीं स्वर का और उसकी ऊँची नीची ध्वनि का अर्थ होता है। मैं प्यासा हूं, इस वाक्य का अर्थ है मुझे पानी चाहिए प्रसंग से उसका अर्थ 'मैं अतृप्त हूं, यह भी हो सकता है। इसी प्रकार एक आध अर्थ और भी हो सकते हैं। फिर भी पानी की प्यास से लेकर आत्मा की अतृप्ति तक जितनी सीढ़ियाँ मनुष्य को पार करनी पड़ी होंगी उनका दृश्य संगीत के स्वरों और उनकी मूर्छनाओं तथा राग रागिनियों से चित्रित किया जा सकता है। यह भावनाएं भाषा के बश की बात

नहीं है। भाषा जो कुछ कह पाती है उसका पूरा रस सुनने वाले पर संगीत के बिना अरस नहीं पाता। वही शब्द कभी स्वर को उठा कर, कभी जोर से, कभी धीरे से, कभी झटके से, कभी सपाटे. से बोलने से विभिन्न अर्थ उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कभी क्रोध से, कभी प्रीति से, कभी विरिक्ति से, कभी एकही शब्द योजना विभिन्न रागों में जैसे बिलावल, भीम पलासी और भैरवी में गाने से विभिन्न भावों को उत्पन्न करती है। इस प्रकार ज्यों ज्यों संगीत उन्नत हुआ हमारी रागात्मकता का विकास होता गया। जितना ही बड़ा संगीतज्ञ होगा उतनी ही बारीकी से अपने भावों को नाद द्वारा स्पष्ट करने की शक्ति रखेगा मनुष्य की चित्तवृत्ति पर संगीत से अधिक किसी कला का प्रभाव शायद ही पड़ता हो। यह प्रसिद्ध है कि नींद न आने पर जब सारी दवाएं और उपचार निष्फल रह गये हैं संगीतज्ञों ने गाना गाकर सुलाया है इत्यादि। संगीत में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। संगीत मनुष्य क्या पशु पक्षियों तक को मोहित करता है।

संक्षिप्त इतिहास

भारतीय वाङ्मय अधिकतर पद्य में ही सुरक्षित है। भारतीय संगीत की परम्परा बहुत पुरानी है। मोटे तौर से हम भारतीय संगीत की परम्पराओं को चार भागों में बाँट सकते हैं। (१) शब्द प्रधान संगीत (२) शब्द व स्वर प्रधान (३) केवल स्वर प्रधान (४) आधुनिक संगीत जिसमें पुनः शब्द और स्वरों में एक प्रकार के सामंजस्य लाने की आवाज उठाई जा रही हैं। (१) यह शब्द प्रधान सगीत सामवेद के गान से प्रारम्भ होता है। इस संगीत में स्वरों का आज कल जैसा चढ़ाव उतार नहीं था। वह पद्य अधिकतर धार्मिक और गम्भीर ही होता था। वह पद्य संगीत प्रधान नहीं अर्थ-प्रधान ही होता था। वे श्लोक मात्र थे गीत नहीं। उनकी कविता, संगीत से अधिक आकर्षक थी।

पर जनता के गले के नीचे ये नियम, गम्भीरता और प्रतिबन्ध

नहीं उतरे । जनता ने ही सदा भारतीय संगीत को प्राण देकर बचाया है ।

उसने जंगल में चिड़ियों का फुदकना देखा और गाना सुना । उसने मोरों को नाचते देखा उसने ऊषा को मुसकराते देखा और देखी संध्या की उदासी । इन प्रकृति की भाव भगियों में एक व्यापक संगीत उसने पाया । मनुष्य के कार्य कलापों से वह संगीत फूटकर बहने लगा । सुख में, दुख में प्रसन्नता और उदासी में वह भी गाने लगा और होते होते प्रकृति की सम्पूर्ण भाव-भंगियों का समावेश संगीत में कर दिया । जंगलियों के संगींत में वायु के वेग जैसी शक्ति थी सरिता के बहाव जैसा वेग था, झरने के निनाद जैसा हाहाकार था । होते होते संस्कारों और उत्सवों पर भी गान व नृत्य एक रीति रिवाज सा बन गया ।

इस प्रकार लोक के इस संगीत का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर भी पड़ रहा था । उस समय संस्कृत में बड़े ही संगीत प्रधान ललित काव्यों की रचना हुई । गीत गोविन्द को भी हम उसी परम्परा में ले सकते हैं । इस संगीत में स्वर की भी प्रधानता बढ़ी । उस समय के स्वर मौलिक रूपसे उस समयके लोक-संगीत से ही आए । फिर शास्त्रीय संगीत ने उन्हें अपना लिया और नियमों से जकड़ लिया । शास्त्रीय संगीत के अब कोई धार्मिक होने का प्रति-बन्ध नहीं था फिर भी शब्दों के अर्थों के महत्व पर काफी ध्यान रखा जाता था । बड़ी कोमल कान्त पदावली का इस काल में निर्माण हुआ । काव्य का संगीत के सम्पर्क से एक बड़ा ही लालित्य पूर्ण साहित्य प्राप्त हुआ । इस काल को हम शब्द स्वर प्रधान काल कह सकते हैं । इस समय संगीत में रागोंकी जातियां उत्पन्न हो चुकी थीं । संगीत बड़ी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था । भरत मुनि का नाट्य शास्त्र लिखा गया । यह कविता और संगीत का पूर्ण सामंजस्य काल था । लोक कविता प्राकृत में होती थी । लोक संगीतने जीवनानु-भूतियों को गाया और बड़ा ही सरस गाया । लोक सदा गाता ही आया है

निश्चल, अज्ञात और अविरोध लोक ने शास्त्रीय संगीत को फिर मौलिक स्वर दिये जिसे शास्त्रीय संगीत ने तरह तरह से सजाया धीरे धीरे संगीत राजे महराजों के दरबार की वस्तु बनने लगा। राजाओं ने संगीत को बड़ा प्रोत्साहन दिया, बड़ा मान दिया, बहुत उन्नत किया यह सब ठीक है। सारंगदेव की संगीत--रत्नाकर लिखी गयी जो भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के बहुत आगे की वस्तु थी। रागों में बड़े सुधार हुये उनकी शुद्धता के नियम तथा स्वरों को महिमा में आविष्कार हुआ। यह समय था जबकि कविता की ओर से ध्यान हटाकर संगीतज्ञों ने स्वर साधना को ही पूर्ण महत्व दिया।

इसी समय एक बड़ी भयंकर सांस्कृतिक आँधी आई। यह आँधी दक्षिण से होते हुये उत्तर में जैसे बस गई। यह आँधी थी मुसलमानों के आक्रमण। वे यहां बस गये और उनके साथ फारस की संस्कृति भी हमारा कलाओं में बस गई। कला भोली और उदार होती है। कहना न होगा जिस प्रकार भारतीय कलाओं ने फारस की कलाओं के साथ मेल किया था यदि कहीं मनुष्यों ने भी वही समझौता बरता होता तो मुसलमान अभी तक अभारतीय न बने रहते।

भारतीय संगीत पर फारस के संगीत का प्रभाव

भारत में संगीत ने कालान्तर में बहुत मोड़ लिये पर एक झटके में इतना बड़ा परिवर्तन कभी नहीं आया। यह महान् परिवर्तन था। कम से कम उत्तर प्रदेश के संगीत में तो इसने आमूल परिवर्तन कर दिये। यह नई आई हुई संस्कृति भारतीय संस्कृति से कुछ बातों में तो एक दम विपरीत पड़ती थी। इस नई संस्कृति में एक प्रगाढ़ सांसारिकता, शारीरिकता, रसीलापन तथा चटपटापन था। यह तो ऐतिहासिक सत्य है ही कि भारतीय संस्कृत उस समय शिथिल हो गई थी। उस समय लोग परिवर्तन के लिये जैसे भूखे बैठे थे। उन्हें एक बड़ा भारी परिवर्तन मिला और भारतीय-कला ने उसका स्वागत किया। सारे मौलिक

परिवर्तन पहले लोक से ही आरम्भ होते हैं। शास्त्रीय संगीत ने अवश्य ही कुछ दिनों कुछ सोचा होगा पर लोक संगीत के भाषा. भाव, शैली और संगीत में स्पष्ट आँधी आई। विकास दूत ही शिथिलिता को घर के झकझोरता है। विकास सदा परदेशी ही होता है और उसकी बराबर निर्दय दूसरा नहीं हो सकता। वह पुराने मूल्यों को धारण भी करता है तभी तो नए मूल्यों का निर्माण सम्भव होता है। भारतीयता के मूल्य बदले और आमूल परिवर्तनों के साथ बदले। भारतीय कलाओं के साथ संगीत कला में भी भारी परिवर्तन आए। संगीत और कविता का सम्बन्ध पति पत्नी का जैसा है। कविता पर, उसकी भाषा और शैली पर भी प्रभाव पड़ा। अभी शुरू से हम इसकी रेखा खींच सकते हैं। कविता और संगीत के एक साथ विकास का जैसे वह स्वयं स्वरूप है। ध्रुपद की सुन्दरता की सीमाओं में ख्याल का रंगीला पन प्रवेश कर गया। संगीत ने ख्याल में एक प्रकार से नवीन प्राण भर दिये। रागों के साथ रागिनी भी तय्यार हुई। स्वरों और रागों के बारीक से बारीक भेद तैयार हुये।

पर इस शास्त्रीय संगीत को रूप रेखा देने वाला अवश्य ही लोक का ही संगीत रहा होगा। विस्तार में हम नहीं जाना चाहते पर विचार सम्बन्धी कुछ लोक गीतों के प्रकार इस प्रकार थे। दादरा, ठुमरी और विशेष रूप से बन्नी, बन्ना सेहरा और घोड़ी। बन्ना, सेहरा, घोड़ी और दादरा विशेष रूप से लड़के के विवाह में गाये जाते हैं। सुहाग और बन्नी विशेष रूप से लड़की के विवाह में। इन गीतों की संस्कृति भाषा और संगीत सभी कुछ मुसलमानों के आने के बाद अपनी संस्कृति पर उनका प्रभाव पड़ने के बाद ही बने हैं। पहले बन्नी बन्नों के स्थान पर विवाह ही गाये जाते थे। मुसलमानों के आने पर दोनों जगह के संगीत के सम्मिश्रण से जो गीत बने उनका ही यह नवीन नाम बन्नी, बन्ना पड़ा। ये गीत और नाम अब तो अपनी संस्कृति का अंग जैसा बन गया है। इसी कारण यकायक बन्नी-बन्ना शब्द की

उत्पत्ति खोजने में भी मुझे काफी समय लगा। आखिर मेरे मन का यह भ्रम कि ये शब्द हो न हो फ़ारसी से आये हैं ठीक निकला जान पड़ा। खोजते-खोजते एक दिन मैं गुजराती के कोष के पन्ने उलटने लगी उसमें 'बनड़ो' शब्द मिला। उसमें लिखा था कि फ़ारसी का शब्द 'बानो' देखिये अवश्य ही बन्नी, बानो' से बना होगा। हिन्दी कोष पर विश्वास करके बन्ना या बनरा का 'बन्दर' अर्थ करना मुझे अच्छा नहीं लगा था। क्या वर बन्दर है? 'बानों' शब्द में शङ्का की पूर्ति हुई। बानों का अर्थ है कुलवती स्त्री और 'बान' का अर्थ है रक्षक। अवश्य ही 'बान' से पत्नी का रक्षक अर्थात 'बन्ना' बना होगा। और 'बानों' से 'बन्नी'। बनरा या बँदरा गुजराती और फिर राजस्थानी की देन मालूम होती है। गुजराती 'बनड़ों' से बनड़ा और बनड़ा से बनरी हो जाना स्वाभाविक ही है।

ये गीत एक ऐसी स्पष्ट रेखा बनाते हैं कि पिछली संस्कृति और इस सम्मिश्रित संस्कृति का भेद साफ़ साफ़ दिखाई पड़ने लगता है। पुराने विवाहों का बनना एकदम बन्द नहीं हो गया था पर कम अवश्य हो गया होगा। इनका एक सबसे बड़ा स्पष्ट भेद तो यही है कि विवाह भाव प्रधान कुछ गीतों का नाम है और ये नए गीत स्वर प्रधान हैं इससे स्पष्ट है कि वे किसी पुरानी परम्पराके अन्तर्गत हैं जिस परम्पपरा में शास्त्रीय ध्रुपद चले आते होंगे जिनमें भी भावों की ही प्रधानता है।

हमारे यहाँ घोड़ी की कोई रस्म पहले नहीं थी न गीत ही रहे होंगे। हाँ हथिया कहीं कहीं मिलता है। पर उतनी धूम धाम से नहीं। घोड़ी तो मुसलमानों के यहां एक बड़ी विशेष रस्म होती है। बड़े सुन्दर गाने उनके यहां घौड़ी के हैं। सेहरा भी इसी प्रकार उन्हीं का रस्म थी जिसे हमने भी अपना लिया है। गालिब का सेहरा बड़ा प्रसिद्ध है। यहाँ हम विषय को बढाना नहीं चाहते। फिर भी यह सम्मिश्रण बड़ी भारी घटना थी इतनी बड़ी कि इस पर पूरी पुस्तक लिखनी पड़ेगी।

इसके अतिरिक्त इसी प्रकार विकास की दिशा को विस्तृत करने वाली एक बड़ी घटना और भी घटी थी जो अंग्रेजों के सम्पर्क में आने से हुई। कला में चतुर्मुख परिवर्तन हुए। मोटे तौर से हम कह सकते हैं कि अंग्रेजी संगीत का अधिक प्रभाव शहरों पर पड़ा और मुसलमानी संगीत का व्यापक प्रभाव है। सेनेमा का संगीत अंग्रेज़ी संगीत से ही अधिक प्रभावित माना जा सकता है। पर इन प्रभावों को हम एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते !

जो कुछ भी हो इधर दो तीन शताब्दियों से स्वर के और गले बाज़ी के आगे कवित्व की उपेक्षा होती आई है। जाने में हो या अन-जाने में यह प्रवृत्ति हमें संगीत में संतुलन और महत्व नहीं लाने देगी। न संगीत को जनता की ही वस्तु बनने देगी। सेनेमा के गानों ने ही संगीत में भावों का प्रवेश कराने का बीड़ा सा उठा लिया है। दूसरी ओर हमरा कवि संगीत को तलाक सी दिए दे रहा है। स्पष्ट है कि सामंजस्य बिगड़ गया है और जितने विस्तार से यह बिगड़ा है उसे उतने ही विस्तार से बनाना होगा।

संगीत की कविता और साधारण कविता की गति आज खड़ी बोली की ओर तेजी से दौड़ी चली जा रही है। स्पष्ट है कि उत्तर-दायित्व हिन्दी के कवियों के कन्धों पर है। संगीत में भी लयकारी और कौशल का रिवाज बढ़ता ही जा रहा है। गाने में मिठास समाप्त हो रही है। इस शास्त्रीय प्रवृत्ति से इस नए विकास को पनपने का अवसर नहीं मिल रहा है। अब कुछ संगीतज्ञ सेनेमा इत्यादि के संगीत को राग रागिनियों में करके उन्हें अपनाने का बीड़ा उठा रहे हैं। यह अच्छी प्रवृत्ति है। उसी प्रकार कवि को भी जनता के संगीत का पूर्ण परिचय प्राप्त करना चाहिये।

विवाह

सृष्टि के विकास क्रम की सबसे बड़ी घटना उस दिन घटी सृष्टि ने अपने सहस्त्रों वर्षों के तप से जिस दिन यौन सृष्टि-क्रम का

निर्माण किया था। उस दिन नक्षत्रों ने धरती को बड़ी आश्चर्य-चकित दृष्टि से निहारा होगा। धरती के हृदय में अपनी इस नवीन विजय से जिस सुख का संचार हुआ होगा वह अवर्णनीय है विवाह के भीतर स्त्री पुरुष के आकर्षण की एक स्वाभाविक मनोवृत्ति है जो सृष्टि के विकास का केन्द्र है, वह आदि काल से बिजली की करेन्ट की भाँति अपना कार्य कर रही है। विवाह की प्रथा में प्राण स्वरूप यही भावना कार्य कर रही है वैसे मनुष्य ने इसे भिन्न २ प्रकार से संस्कृत किया है और सजाया है। यह स्त्री पुरूष का आकर्षण जीवन की कोई एक घटना नहीं है अपितु यही एक घटना है जो सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त है। यही एक मात्र केन्द्र बिन्दु है। इसके चारों ओर मानव जीवन घूम रहा है। और जिसके चारों ओर सब धर्म-कर्म राग, विराग कला कौशल ज्ञान विज्ञान, और उन्नति घूम रहे हैं।

अब तो इस आकर्षण के मूल प्रवृत्ति को सभ्यता के आवरण ने इतना ढक दिया है कि हमें पग पग पर जैसे कोई भय खाये लेता है। समाज ने चारों ओर प्रतिबन्धों का जाल फैला दिया है।

विवाह में विशेष रीति है कन्या दान। आज कल कुछ पढ़े लिखे लोग कन्यादान के विरुद्ध होने लगे हैं। कहते हैं कि कन्या क्या कोई वस्तु है जिसका दान होता है। यथार्थ में तो न कन्या वस्तु है और न पिता स्वामी है। दान का अर्थ संकुचित रूप में यहाँ नहीं लिया गया है। कन्या को यथार्थ में न कोई देता है न कोई लेता है। पिता और माता तो ईश्वर की ओर से नियुक्त किये हुए एक निमित्त मात्र हैं। जिस प्रकार किसी भी व्यापार में फैक्ट्री से लेकर दूकान तक सामान को लाने के सभी साधन समान रूप से अपने अपने स्थान पर परम आवश्यक है उसी प्रकार वर और कन्या के जीवन से लेकर जब तक स्वयं वे सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनते हैं सारे निमित्त समान रूप से उनके लिये परम उपयोगी हैं। हम यह नहीं कह सकते कि सृष्टि के इस नियम में पिता का दरजा पति से कम है या भाई बहिन तथा ननद देवर के प्रेम

कोई समानता हो सकती है। सब सम्बन्ध समय के हिसाब से अपने अपने स्थान पर पूर्ण आवश्यक हो कर स्थित हैं। आकाश में तारे अपने अपने स्थान पर बहुत ठीक और परम आवश्यक जान पड़ते हैं। इसी प्रकार इन नैसर्गिक सगे सम्बन्धियों के विषय में एक दूसरे के प्रेम की तुलना करना बड़ा ही घातक सिद्ध होगा। नन्हें बच्चे का कभी कभी हम मुख चूम लेते हैं कभी उसके नन्हें पैर और हाथ। इसमें हम कौन से प्यार को बड़ा कहें कौन से को छोटा।

बाल्यावस्था में माता पिता की जो आवश्यकता है, जो मजबूरी है उसे दूसरा स्वयं ब्रह्मा के बिना कौन पूरी कर सकता है। मैं तो कहूँगी स्वयं ब्रह्मा ही माता पिता का रूप धारण करते हैं। इसी प्रकार यह वर को कन्या नहीं समर्पित की जाती अपितु विष्णु को उसकी शक्ति सौंपी जाती है। श्लोकों में भी ऐसा ही मिलता है। सृष्टि के इस महादान को विष्णु के सिवा दूसरा कौन ग्रहण कर सकता है। वर इसी भावना से कन्या का ग्रहण करे। भोग की भावना से नहीं वह सृष्टि के विकास के लिए, जगन्नियन्ता की इच्छा की पूर्ति के लिए उसे समर्पित की जाती है। ऐसा ही श्लोक कहते हैं। जो कुछ जिसका उचित है वह उसको पाता है।

मनुष्य ने इसी औचित्य को अपनी रागात्मकता के द्वारा जन्म और विवाह के संस्कारों में उसे सजाया है। उसके पीछे अनेकानेक कलाओं का निर्माण किया और अपनी सम्पूर्ण बुद्धि से सम्पूर्ण कलाओं से संस्कारों के रूप में उन्ह को धूमधाम से प्रदर्शित किया है।

मनुष्य ने वैदिक काल से आज तक विवाह के न जाने कितने प्रकारों का निर्माण किया। कल्पना को कितना तीव्र किया। कलाओं में कितनी बारीकियां निकालीं, यह एक अपने आप में महान इतिहास है। कहना केवल इतना ही है कि समुद्र के रोर के समान यह एक स्वतंत्र और शक्तिशाली प्राकृतिक वृत्ति है उसे मनुष्य चाहे वीणा में भरे चाहे बाँसुरी में चाहे अपने गले में चाहे जैसे उसकी

अभिव्यक्ति करे। विवाह भी एक ऐसी ही बेबस मजबूरी है।

इन विवाह के अनेकों संस्कारों में तथा इनके गानों में समय समय पर न जाने कितनी रीतियां कहाँ कहाँ से आकर मिल गईं। ढूँढने पर कुछ झूठ सच पता लगाया जा सकता है।

(१) जोग टोना जो लोक गीतो में बड़े विधि से गाये जाते हैं उन्हीं को ले लीजिये, यह प्रथा कहाँ से आई कहा नहीं जा सकता। फिर भी अनुमान से ऐसा लगता है कि नाथ सम्प्रदाय से आई होगी। इस सम्प्रदाय में सभी जाति के लोग सम्मिलित थे अतः ब्राह्मणों के ऊँचे आदर्श काम नहीं करते थे। उस समय के असयमी अति साधारण जनों में तात्रिक लोगों का यह समुदाय था जिसमें यक्षिणीं, डाकिनी व पिशाचों को सिद्ध किया जाता था। इस सप्रम्दाय में बड़े २ साधक भी हो गये हैं। इस की अपोल जन साधारण में बहुत थी। इन सिद्धों के चमत्कार बहुत प्रसिद्ध हुये। जिनमें 'कामरू कमच्छा' तथा 'बगाले के जादू' बहुत प्रसिद्ध हैं। आज भी देहातों में इन पर बहुत वि वास किया जाता है। पढ़ो लिखी स्त्रियाँ भो टोना मानती चली आ रही हैं। भीतर हो भीतर जोग टोना की मनोवृत्ति संस्कार बन गई। अतः विवाह में लड़की वाले की ओर ऐसो भावनाओं का होना और वर को अपनी ओर आकर्षित करने की मोहनी डालना स्वाभाविक ही है। वर पर ऐसा जादू करना कि वह दूसरी स्त्री को भूल कर भी न देखे। एक स्त्री सुलभ भावना है। भावों में एक प्रकार की लहरें होती हैं जो आपस में टकराती है और बलवती लहरें विजयी भी होती हैं।

इन भावनाओं के साथ चाहे जड़वाद मानाजाय पर इतनी बात तो अवश्य है ये लहरें एक प्राणी की भावनाओं को दूसरे प्राणी तक अव य ले जाती हैं तभी तो ऊँचै हथिया के सोने के हौदवा तेहि चढ़ि आवै दमाद दुलरुआ। चोवा चँदन दुलहा गरदा उड़ावै जोग कै मातल दुलहा पलकौ न लेइ रे।' 'जोग का मातल दुलहा पलको न लेइ रे'

जोग में यह शक्ति है जो वधू परिवार वालों की ओर उसका मन खींच रही है। यह जाग पुरुष के लिये एक वैसा ही आकर्षण प्रतीत होता है जैसे स्त्री को सुहाग अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। ये वे नैसर्गिक भावनाएँ हैं जो स्त्री पुरुष का आकर्षण बनी हैं। व्यवहार में उनकी कुछ कुगति होते हुए भले ही दिखाई पड़े पर उनमें अवश्य ही कुछ सार भूत तत्व हैं जिनके कारण उनकी मान्यता अभी भी चली आ रही।

विवाह के अवसर पर परिवार वालों मित्रों तथा अन्य शुभचिन्तकों के दिये हुये आशीर्वाद खाली जाते हों ऐसा सम्भव नहीं। हमारा चित्त इतने दिनों के संस्कार से इतना सामाजिक हो उठा है कि उस पर इन कोमल भावनाओं का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि प्रेम विवाह एक बार भले ही असफल सिद्ध हों किन्तु माता-पिता और समाज के सम्पन्न किये हुये विवाह कठिनाई से असफल होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि विवाह में व्यक्तिगत भावना का स्थान ही नहीं है। वर की व्यक्तिगत भावना की विजय इसी में मानी गई है कि वह समाज मुखापेक्षी भी बना रहे।

इसी प्रकार सुहाग की प्रथा ले लीजिये। सुहाग के पीछे जो धार्मिकता गढ़ दी गई है यह एक दिन के प्रयत्न की बात नहीं है। सुहाग के अर्थ का यह जादू न जानें कितनी सतियों के बलिदान से बनाया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि औरों की देखा देखी हमारे देश में भी यह स्वभाव बल पकड़ता जा रहा है कि सारी पुरानी चीजें वाहियात हैं और उनकी खिल्ली उड़ाना ही- नई पीढ़ी के लड़के लड़कियों का काम है। यह माना जा सकता है कि धीरे २ इस प्रथा में बहुत सी बातें निर्जीव और बेकार हो गई हैं। और बहुत सी कल्पनायें अध खिली ही रह गई हैं। विवाह में सामाजिकता की प्रवृत्ति तथा आडम्बर और कर्म काण्डों को आवाश्यकता से अधिक महत्व दिया जाने लगा है और व्यक्ति का महत्व घट गया है।

इसी से व्यक्ति के हृदय पर एक प्रतिक्रिया हुई है। इसका होना स्वाभा वक ही था। पर यह हमें न भूलना चाहिये कि व्यक्ति के बलिदानों से समाज शक्ति पाता है। दोनों का अपना महत्व-पूर्ण स्थान है। वाल विवाह, बहु विवाह और दहेज इत्यादि की कुप्रथाओं ने विवाह के आकर्षण को कम कर के भार स्वरूप बना डाला है। इनके निरीक्षण तथा सुधार के लिये हमें एक संतुलित बुद्धि से कार्य लेना चाहिये हमारी संस्कृति हमारी सब से अमूल्य निधि है। प्रचार या सुधार के आवेश में हमें अपनी एक मात्र कमाई को गवाँ नहीं देना है। नहीं तो हमारे पास रह ही क्या जायेगा। देशों पर राजनीति का एक पाशविक आतंक छाया हुआ है जिससे संसार की संस्कृति खतरे में है। पर हमें विश्वास है कि इस आतंक के कम होते ही उनके संस्कार उभरेगें और प्रत्येक देश सासंकृतिक सामञ्जस्य को स्थापित करने के लिये लालाइत हो उठेगा। क्योंकि संस्कार इस फौजी नियंत्रण से अधिक व्यापक हैं।

हम पहले से ही इस सत्य से जागरुक हो कर इस अज्ञानता की पुनरावृत्ति क्यों करें बल्कि हम युद्ध के अवरोध का नारा ही अकाश में क्यों न गूँजायं और संसार के आगे एक नवन सामंजस्य का मार्ग खोलें। हमको किसी वस्तु के तोड़ने मरोड़ने का अधिकार तभी प्राप्त हो सकता है जब हम उससे अधिक लाभ दायक व्यापक तथा उपयोगी वस्तु का निर्माण कर सकें। अन्यथा हमको उसे छूने का भी अधिकार नहीं है। हमारा विश्वास है कि इस विज्ञान ने हमारी विकास क्रिया को और आध्यात्मिक उन्नति को भी आगे बढ़ाया है। अन्यथा वह ठहर न सकता। गाँधी जी ने बहुत सी प्रथाओं का खण्डन किया पर उनके स्थान पर उनसे अधिक महत्व शाली प्रथाओं का निर्माण भी किया और नई रागात्मकता और आध्यात्मिकता के दर्शन उन रूढ़ियों में कराये। समय और युग के अनुरूप हमें प्रथाओं को बदल डालने का पूर्ण अधिकार है पर हमें निर्माण की विकास इच्छा

के तोड़ने फोड़ने का अधिकार नहीं। ब्राम्हणों के युग धर्म को गाँधी जी ने गाया था 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जानैरे" इस प्रकार नए युग में मूल्यों को बदलते समय, पुरानी रागात्मकताओं को नष्ट करते समय बहुत ही करुण उदार और धीर होना चाहिए।

विवाह की रीतियाँ

बिवाह में कुछ रीतियाँ तो शास्त्रीय विधि विधान के अंतर्गत कही जा सकती हैं पर बिवाह का अधिक भाग लोक की आस्थाओं पर आधारित है। ये रीतियाँ समय समय पर विभिन्न प्रदेशों से आ आकर मिलती गयीं। आज इनका जो उलझा हुआ रूप है उससे यकायक उनका उद्‌गम ढूँढ़ना कठिन है फिर भी हम कुछ ऐसी बातों का पता अवश्य लगा सकते हैं जिससे हमारे पुरखों के स्वभाव का पता मिले पर उनके कारण का दावा हम समाज शास्त्रीय या राजनीतिज्ञ की भाँति एक साँस में सौ निर्णय नहीं कर सकते क्योंकि हम मानते हैं कि इस सीमित मानव समाज में इतिहास के बहुत पहले से भी एक महान् इतिहास चला आ रहा है उसकी स्मृति भी मनुष्य के मस्तिक में वैसी ही प्रबल है जैसे अपने पुरखो की परम्परा से आई प्रवृत्तियों थी। हम संसार के सब परिवर्तनो को केवल आर्थिक कह कर ही संतोष नहीं कर सकते। हम मानते हैं कि आर्थिक स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ता है इससे अधिक नहीं।

हम संक्षेप में उन रीतियों का जो हिन्दू विवाह में सुप्त या जाग्रत रूप में आज भी चली आ रही हैं वर्णन करने का यत्न करेंगे।

विवाह भर में हमें मुख्यतया एक यह भाव ही प्रधान लगता है कि विरोधी शक्तियों से भय तथा उनसे रक्षा प्राप्त करने के लिए देव

पितरों और विघ्नहर्ता गौरी गणेश की पूजा सब कहीं विशेष रीति पर होती है। इन लोक गीतों का काल खेती प्रधान युग था जिसमें सारी खेती में स्तेमाल होने वाली वस्तुओं और लोगों के लिए सम्मान आदर और श्रद्धा का भाव है। इसके अतिरिक्त जीवन के प्रति एक महान् आस्था जिसके फल स्वरूप टोने टोठके शकुन अपशकुन पर घना विश्वास है आदि से एक एक विधिको हम लेते हैं। सब कहीं थोड़े बहुत फरक से ही ये रीतियाँ उत्तर भारत भर में मनाई जाती हैं।

(१) वरिच्छा (बरिच्छा)

यह शब्द स्वयं ही अपना अर्थ व्यक्त करता है। वर की इच्छा से ही कुछ ठहरौनी स्वरूप वर पक्ष को कन्या पक्ष वाला देता है।

यह पहला सगुन है। चाँदी सोने या फूल के कटोरे में पीले चावल व हल्दी सुपारी तथा कुछ रु० रखकर वर की भेंट किया जाता है। लड़की के हाँथ से छुआकर यह कटोरा भेजा जाता है। वर पक्ष का पंडित यो चाहे पहले किसी शुभ घड़ी में या तिलक के समय वर के हाथ पर रखता है। यह एक प्रथम सगुन है जिसे करने के बाद दोनों प्रतिज्ञा बद्ध हो जाते हैं।

तिलक

यह विवाह का दूसरा एक प्रमुख शकुन है। कहते हैं कि तिलक चढ़ने पर आधा विवाह हो जाता है।

विवाह में नाई बारी बड़े ही महत्व पूर्ण परजे समझे जाते हैं। ये परजे इतने परिवार में घुले मिले थे कि घर वालों का ही अंग बन जाते थे। नाऊ नाउन जाकर लड़का लड़की देख आते थे और विवाह पक्का हो जाता था। तिलक और वरिच्छा के पीछे अगणित आर्थिक कुरीतियाँ लग गई हैं इन्होंने सम्पूर्ण कला और उत्साह को भंग कर

दिया है अन्यथा तिलक इत्यादि अपने मन की वस्तु है जो चाहें दें। हाँ कुछ वस्तुओं की रीति चली आ रही है वे ये हैं। तौल में या गिनती में कोई संख्या सम नहीं ली जाती। (१) चावल (२) हल्दी (३) सुपारी (४) एक फूल का माला (५) पान के बीड़े (६) एक जटा नारियल (७) हो सके तो एक चाँदी या सोने का नारियल व सुपारी भी (पर यही शकुन होकर शोभा ही है) (८) चन्दन का एक मूठा (९) लगन पत्री (१०) एक चिट्ठी (११) कपड़े जिसमें कम से कम ५ थान जिनमें किसी किसी के घर पहाड़ की चुनरी पगिया भी जाती हैं। इन कपड़ों में मलमल का एक थान और लहँगे का कपड़ा जरूरी माना जाता है (१२) इसके अतिरिक्त रु० इत्यादि वा अन्य भेंट के सामान चाँदी सोने बर्तन जेवर इच्छा से जो कोई करे। (१३) कुछ नजर (१४) वर पक्ष के पंडित व नाई इत्यादि के हेतु कुछ न्योछावर इत्यादि।

लगन पत्री में लगनों की पूर्ण व्यवस्था रहती है। पत्र में सामान इत्यादि का विवरण रहता है। चंदन का मूठा। अन्य इस प्रकार की वस्तुएँ लड़के के शृङ्गार की तथा शुभ मानी जाती हैं। लड़की वाले के घर से यह तिलक का सामान जिसमें लड़के का सम्पूर्ण शृङ्गार रहता है जाता है। लड़के को यह चढ़ाया जाता है। इस समय के गाने 'आराधना' व शकुन में मिलेंगे।

सूप छूना

तथा

गित कटइया

किसी शुभ दिन विवाह तै हो जाने पर पाँच या सात सोहागिनें मिल कर अनाज छूती हैं। इस रीति में हिन्दू समाज के सामाजिक संगठन का सुन्दर चित्र मिलता है। विवाह के लिए सामूहिक रूप से स्त्रियाँ घरैतिन का हाथ बटाती हैं। पंडित जो दिन शुभ बताते हैं

उस दिन गीत प्रारम्भ होते हैं। भारत में गाने की बड़ी प्रथा थी। स्त्रियाँ उस दिन से प्रत्येक कार्य करते समय गाना गाती हैं। आँटा दाल चावल बनाते समय, सीते समय, बरो बनाते समय सामूहिक रूप से गाती हैं। सर्व प्रथम सूप छूने की यानी अनाज बनाने की रस्म होती है। उस दिन सात या पाँच सुहागिने एकत्रित होकर सिर करके सेंदुर पहन कर महावर लगा कर (इसे मूँड़ मेहाउर बोलते हैं) और गोद डलवा कर जिसे कोंछा भरना भी कहते हैं, सभी स्त्रियाँ अपने अपने सूप में सात बार अनाज लेकर पछोरती हैं। यह अनाज अधिक तर उर्द ही होता है। इस उर्द को फिर चक्की में दरते भी हैं। यह दली हुई दाल ही मातृ पूजा के दिन पितरों को हाँडी में ताने के तथा सिलमायन के दिन पिसने के काम आती है। उसी पिसी दाल के बरे पितरों के लिए बनते हैं।

निमंत्रण तथा आतिथ्य—किसी भी शुभ कार्य में स्त्रियाँ जब बुलाई जाती हैं तो नाऊ हलदी और चावल लेकर बुलाने जाता है और चावल द्वार पर छिड़क कर तथा हलदी को एक गाँठ निमंत्रण स्वरूप दे आता है। इसके पश्चात् दुबारा जब घरैतिन रीति करने के लिए एक दम तय्यार हो जाती है तो टोले में दुबारा बुलावा भेजती है जिसे चलाव कहते हैं। बिना इस चलाव के स्त्रियाँ नहीं आती हैं। अपने घर जब स्त्रियाँ आती हैं तब आसन देने के पहले उनकी चद्दर छूने की रीति है। इसके पश्जात् बड़ी बूढ़ियों के पैर छू कर या नमस्कार करके सम्मान प्रदर्शित करते हैं। किसी शकुन के कार्य में आने पर वह शकुन समाप्त होने पर स्त्रियों की माँग में सिन्दूर पहनाना भी सुहागिन के सम्मान का सूचक है। बाद में उनकी गोद में कहीं गुड़ और चने की दाल और कहीं बताशे व लड्डू देने की रीति है।

बरी पड़ना—कहीं कहीं विवाह के लिए बरी भी स्त्रियाँ देती हैं। पहले नहा धोकर सुहागिनें सब शृंगार करके सात पाँच बरियाँ चुआ

कर उसकी सेंदुर टीक कर पूजा कर लेती हैं इसके उपरान्त बरी देना आरम्भ करती हैं। गान तो विवाह के सभी शुभ कार्यों में अखण्ड कीर्तन की भाँति जारी रहता है!

खम्भा या मंडप—शुभ मुहूर्त में पाँच या सात बाँस, १ हरिस और फूस की मदद से इसे छाते हैं। बीच में गड्ढा खोद कर इसमें १ टका १ सुपारी डाल देते हैं और एक लम्बे हरे बाँस की मदद से हरिस को खड़ा कर देते हैं यह क्रिया पंडित कराता है इसके उपरान्त घर वाले मनमाना सुन्दर मंडप छा लेते हैं।

तेल चढ़ना—खम्भे के ही दिन लड़के व लड़की को तेल भी चढ़ाया जाता है। लड़की या लड़का उस दिन से नहाता नहीं न कपड़े ही बदलता है। लड़कियाँ जो जेवर या चूड़ी पहने होता हैं उसे उतार लिया जाता है जिसे नँगियावन कहते हैं, फिर पाँच या सात कन्यायें बारी २ से दूब से पाँच पाँच बार तेल चढ़ाती हैं साथ ही पास में खड़ी स्त्रियाँ तेल के गायन का अखण्ड कीर्तन करती हैं। कम से कम पाँच या सात तेल चढ़ाये जाते हैं। इसी प्रकार हल्दी और उपटन भी होते हैं। पर ये हल्दी और उपटन सुहागिनों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं।

मटमँगरा या मृत्तिका मंगल—उसी प्रकार सुहागिने मूड़मेहाउर से सज कर गोदियाँ भरवा कर, नाइन का भी उसी प्रकार सन्मान करके ताल के या खेत के किनारे मिट्टी खोदने जाती हैं। जाने के पहले वे मानर की पूजा भी करती हैं। मानर उस नगड़िया को कहते हैं जो चमार लाकर बजाते हैं। अब आगे आगे सूप में पूजा की सामग्री लेकर नाइन चलती है। चमार नगाड़ा बजाते हुए उसके आगे चलता है। एक फावड़ा व टोकरी भी मिट्टी लाने के लिए साथ में जाती है। देवताइन की ननद फावड़े से खोद कर पाँच बार मिट्टी निकालती है। उसे उसका नेग मिलता है और गालियाँ गाई जाती हैं। जिस स्थान

से मिट्टी निकालती है उस स्थान की सुहागिन स्त्रियाँ पहले पूजा कर लेती हैं। यह मिट्टी पवित्र मानी जाती है। देवता के निमित्त कार्यों में स्तेमाल की जाती है। जैसे कलस के नीचे बिछाने, वेदी बनाने तथा चूल्हा बनाने के काम आती है।

कुल देवता की पूजा—यह पूजा भी उसी दिन होती है। अपने अपने कुल की पूजा करने की रीति अलग अलग है।

कलस गोंठना—कलस ननँद गोंठती है। यह गोबर तथा जौ की मदद से सजाया जाता है। गोबर अत्यन्त ही पवित्र माना गया है। धातुओं में लोहे का बड़ा मान है। कहते हैं लोहा पहनने से डर नहीं लगता दूसरे नजर नहीं लगती। लोहे के सात छल्ले बनाए जाते हैं जिन्हें शकुन की विभिन्न वस्तुओं में बाँध देते हैं। (१) कलस में (२) पीढ़े में (३) मूसल में (४) खम्भे में (५) गेड़ुवा में (६) लड़के या लड़की की कलाई में कंगन के साथ (७) लड़की और लड़के की उँगली में।

ये लोहे के छल्ले यों ही नहीं बाँध दिए जाते। ये कंगन के साथ बाँधे जाते हैं। कंगन एक नन्हीं सी पुटकी होती है जो आँटे के चोकर में राई और नमक मिलाकर बना लेते हैं। यह माना जाता है कि इससे नज़र नहीं लगती। यह कंगन भी उन्हीं लोहे के छल्लों के साथ उन्हीं वस्तुओं में केवल उँगली छोड़ कर बाँधा जाता है।

कोहबर—कोहबर की चित्रकारी बड़ी अद्भुत् कल्पना है। यह पितरों की पूजा का स्थान है। इसे एक गुप्त स्थान पर बनाते हैं जिसमें किसी ऐसे वैसे की दृष्टि इस पर न पड़े। इसकी कल्पना विभिन्न जाति और कुलों में विभिन्न प्रकार से होती है। अधिकतर लोग दीवार पर ही कुछ चित्र बनाते हैं। इस चित्र में कुछ लोग साँप बिच्छू जैसे ज़हरीले जीवों का भी चित्र बनाते हैं। यह स्पष्ट ही है कि प्रत्येक

अशुभ से रक्षा की प्रार्थना स्वरूप ही इसका आविर्भाव हुआ होगा। इसके अतिरिक्त यह स्थान एक अत्यन्त रहस्यपूर्ण स्थान है। विवाह के अत्यन्त करुण वातावरण में वर वधू यहाँ साथ साथ लाए जाते हैं। मंडप के नीचे की सारी करुणा एक क्षण में मधुर हास्य में और उदासी व गम्भीरता सरस प्रेम-भावना में परिणत हो जाती हैं। यह स्थान का ही महत्व है कि रोते चेहरे हँसने लगते हैं। सालियों और सरहजों के रसीले हास्य से वातावरण ही बदल जाता है। कोहबर के नाम से ही उसके गीत भी हैं जो इसी प्रेम-भावना तथा हास्य से ओत प्रोत हैं जिन्हें हमने गाने के साथ दिया है। यहाँ पर अनेकों ऐसी रीतियाँ होती हैं (१) लहकौर—जिसमें पति पत्नी एक दूसरे का जूठा खाते हैं। (२) पंसासारी—इसमें कुछ जेवर डाल कर हार जीत की बाज़ी लगती है। स्त्रियाँ कन्या को जिता कर वर का मज़ाक बनाती हैं यह बड़ी ही विनोदी रीति है। य.ाँ पर बाती मिलाने की भीं एक रीति होती है। घृत के दीपक में ही दो बत्तियों को अलग अलग जला कर वर के द्वारा एक में मिलवाया जाता है। दो प्राणी दो ज्वलन्त शक्तियां एक दूसरे में समाने जा रही हैं यही इसका अर्थ मालूम होता है।

यही वह स्थान है जहाँ से प्रत्येक शुभ कार्य के लिए लड़का लड़की ले जाए जाते हैं। पहले उनको उस स्थान पर ला कर बिठाते हैं और उनकी अंजलि में गुड़ चावल और सिन्दूरदानी रखकर माता या कोई बड़ी बूढ़ी जो रीतियाँ करती हैं अपना आँचल उनके सिर पर रख कर आगे आगे पानी का अर्घ्य देते हुए उन्हें ले जाती है।

कोहबर के पास ही बारात के एक दिन पहले स्त्रियाँ माँई तथा कचौड़ी और लपसी इत्यादि मटकों में बन्द करके रखती हैं। यह माता का प्रसाद है। इसे बारात बिदा हो जाने पर खोल कर नाते की स्त्रियों में बाँटते हैं।

कुआँ की पूजा—बारात वाले ही दिन दोनों पक्ष की स्त्रियाँ कुआँ का या नदी के घाट का पूजन करती हैं। लड़के वाले के यहाँ यह विशेषता होती है कि लड़के की माता कुँए में पैर डाल कर बैठती है तब पुत्र उसे आजन्म आज्ञाकारी बने रहने के लिए बचन बद्ध होकर उठाता है। इसके बाद घर लौट कर स्त्रियाँ घर के द्वार की पूजा करती हैं।

क्वारपन का उतारा जाना—बारात वाले दिन ही लड़की तथा लड़के का क्वारपन उतारा जाता है। कन्या वाले कन्या को और वर वाले वर को अन्य चार क्वारों या क्वारियों के साथ खिलाते हैं। इस समय कन्या तथा वर के सिर पर पत्तल धर कर पूछा जाता है कि क्वारपन उतरा? वह कहता है कि हाँ उतरा। कहीं कहीं सुहागिन खिलाते हैं। इसी समय कन्या तथा वर खा लेते हैं फिर भाँवरों के पहले अन्न खाने को नहीं देते। इसके बाद बची खुची पत्तल की वस्तुएँ घूरे पर गाड़ दी जाती हैं। यह क्रिया ही घूरे की पूजा कहलाती है। यह क्रिया वर के यहाँ बारात चलने के पहले होती है।

बारात वाले दिन दोनों ही पक्षों में और भी कई प्रकार की पूजाएँ होती हैं। अहीर के द्वार की, भुर्जी के भाड़ की पूजा इत्यादि। देव मन्दिर में तो इस महायज्ञ के आदि और अंत में जाते ही हैं। जीवन के कोई भी महत्वपूर्ण स्थान और वस्तुएँ बिना पुजे बचती नहीं! जीवन में प्रतिदिन के सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति के प्रति पूर्ण रूप से मान प्रदर्शन होता है। बारात आने पर कन्या पक्ष वाले अपनी श्रद्धा व्यक्त करने को तरह तरह से बारात का स्वागत करते हैं। इसी समय बागचार की रस्म भी होती है—जनवासे में जाकर वर पक्ष को कुछ भेंट इत्यादि देकर इसे सम्पन्न करते हैं। स्नेह और श्रद्धा स्वरूप दोनों पक्षों से कई रीतियाँ होती हैं जैसे कन्या पक्ष से (१) गोड़ धुलाई (२) तेलवानी इत्यादि। वर पक्ष से (१) ऐपन वारी (२) दहेड़ी इत्यादि का आना।

नहछू नहान—यह एक बहुत बड़ी रीति है। कहते हैं कि पहले लड़के लड़की विवाह के पहले पैर के नाखून नहीं काटते थे। उनके नाखून पहली बार इसी अवसर पर काटे जाते थे। इसी समय कई दिनों की लगन के बाद लड़के लड़की नहलाए भी जाते हैं। कहार या बारी नहलाता और नाई या नाइन नाखून काटती और बहुत सजावट के साथ महावर लगाती है। इस समय सभी स्त्रियाँ न्योछावर करती हैं। इसके बाद वर पक्ष से जो चढ़ाव आया होता है चढ़ता है।

चढ़ाव चढ़ना—चढ़ाव चढ़ाकर उसमें से आवश्यक वस्तुएँ निकाल कर कन्या को पहराते हैं।

उन्हीं आई हुई वस्तुओं से उसका शृंगार भी होता है। चढ़ाव में, कपड़े, शृंगार की वस्तुएँ और उपटन, मेवा दही चीनी के मटके, गौरा गौरी इत्यादि वस्तुएँ रहती हैं।

बारका मेटा—यह एक मटका या हाँड़ी होती है जो वर पक्ष से बारात आने पर भेज दी जाती है। इसमें ही वर के नहान का पानी भरा जाता है इसी पानी से कन्या नहलाई जाती है।

विवाह—इसके बाद वर विवाह के लिए भीतर बुलाया जाता है। उसकी आरती इत्यादि होती है। वस्त्र बदलाए जाते हैं। पृथ्वी दान तथा आसन दान के बाद विवाह की शास्त्रीय और लोक रीतियाँ आरम्भ हो जाती हैं।

इसमें शास्त्रोक्त रीतियाँ जैसे, प्रतिज्ञाए, कन्यादान, लावा परछन, भाँवरे तथा सप्तपदी होती है। इनका वर्णन हम यहा न करेंगे। यहि लोक रीतियों को ही विशेष रूप से हम ले रहे हैं।

सिन्दूरदान—पति स्त्री की माँग में सिन्दूर पहनाता है। पीछे से कोई सुहागिन स्त्री अपने कुल की रीति के अनुसार बुआ या बहिन या भावज सेंदुर बहोरती है यानी दोहराती है। कहीं कहीं पहला सुहाग पति नही धोबिन देती है। यह सोहाग नहाने के पहले लिया जाता है।

विवाह के बाद वर और बधू कोहबर में आते हैं। वहाँ के हास परिहास के बाद वर अपने निवास पर लौट जाता है। कहीं कहीं वह रोक भी लिया जाता है।

कलेवा - दूसरे दिन वर को (देने के सब सामान के साथ देने वाले पलँग पर माड़ो के नीचे) बिछे पलँग पर बिठाकर चारो पावों के नीचे माठ दबा कर बड़ी बूढ़ियाँ पलँग चार करती हैं और सारी स्त्रियाँ एकत्र होकर भेंट स्वरूप रु० या वस्तुएँ वर को देती हैं। इतनी आत्माओं के आशीर्वाद को ग्रहण करके वर-बधू के ऊपर सुहाग जैसे मत्त होकर नाचने लगता है। कुरूप भी वर या कन्या जैसें अलौकिक सौन्दर्य को प्राप्त करती है।

उसी समय कन्या की माता वर तथा वर के साथ आए हुए लोगों को जिन्हें सहबाला बोलते हैं कुछ जलपान भी कराती है इसी को कलेवा बोलते हैं।

भात—उसी दिन दोपहर में कच्चा खाना जो बिरादरी के लोग माड़ो के नीचे बैठ कर खाते हैं भात कहलाता है। इच्छानुसार इसमें वर तथा वर वालों का सम्मान किया जाता है। स्वादिष्ट तथा घराने के विशेष भोजन तय्यार होते हैं।

इसी समय वर तथा वर के माता पिता और बहिन को प्रेम भरी गालियाँ भी गाई जाती हैं।

बड़हार—यह कभी-कभी दूसरे दिन कभी तीसरे होता है। यह रात का भोजन है जिसमें घर बाहर के सभी सम्मिलित होते हैं। इस दिन भी सुस्वाद भोजन बनते हैं।

मिलनी—इसमें दोनों पक्ष के समधी गले मिलते हैं। यदि विवाह में कोई मन मुटाव हो गया होता है तो चलने के समय दूर कर लेते हैं। भेंट स्वरूप कन्या वाला वर पक्ष वाले लोगों को सामर्थ्य अनुसार देता है।

बिदाई—बिदाई के समय कन्या पक्ष वाले तो अपना सब कुछ अर्पण कर चुके होते हैं और आँसुओं के सिवा उनके पास क्या रहता है। पर वर पक्ष वाले इस समय खूब रु० पैसे लुटाते हैं। कन्या पक्ष के अनुचरों को सामर्थ्य के अनुसार रु० देते हैं। वर पक्ष का अन्तिम सत्कार और पक्ष प्रदर्शन करके वर के माथे में टीका करके स्त्रियाँ बिदा देती हैं।

बिदा होने के बाद घर में झाड़ू नहीं लगाई जाती। कहते हैं झाड़ू या सफाई तो घर से किसी अहितकारी या मुर्दे के जाने पर ही लगती है। यह प्रथा भी आशीर्वाद सूचक है। इस प्रकार की कितनी प्रथाएँ हैं जो नित्य होती हैं।

इस प्रकार ये विधियाँ विचारकों और कल्पना—गर्भित व्यक्तियों के लिये असंख्य प्रश्नों को खोलती हैं जो सागर की लहरों की भाँति अनन्त समय तक डूबने उतराने के लिए काफी है।

नन्हें से नन्हें भी कार्य के सम्पादन में न जाने कितने व्यक्त और अव्यक्त हाथ लगे होते हैं। न जाने कितने सुने और अनसुने आशीर्वाद उसमें कार्य करते हैं। फिर भला मैं इस नन्हीं भी पुस्तिका में अपने श्रम का कौन सा अनुपात निकालूँ ? पता नहीं मेरा श्रम उसका सौवाँ भाग भी बन सकेगा ? हाँ इतना मुझे पता है कि मेरा श्रम अत्यन्त अधूरा और अपूर्ण है। यहाँ पर हिन्दू विवाह का एक नन्हा सा चित्र भर लेने का यत्न किया गया है जिनमें भरसक रीति रिवाजों का केन्द्रित करने का प्रयत्न है। पता नहीं पाठक पाठिकाओं के लिए कहाँ तक यह उपयोगी सिद्ध होगी।

अन्त में मैं उन लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिनके सहयोग के बिना इस पुस्तिका का प्रकाशन ही असम्भव था। शब्दों द्वारा आभार प्रदर्शन में कुछ सच्चाई नहीं रह गई है पर दूसरा उपाय भी मनुष्य के पास अभी नहीं है। मैं अपनी बहिन श्री

राजेश्वरी कुँवरि का बड़ा आभार मानती हूँ जिन्होंने बहुत से गीतों के जुटाने और चुनने में सपरिवार सहयोग दिया, और जिनके पतिदेव श्री आर्यनन्दन प्रसाद जी की कृपा से ही इस पुस्तिका का मुद्रण भी सम्भव हो सका।

फिर संगीताचार्य श्री महेश नारायण जी सक्सेना संगीत अध्यापक इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की बड़ी ही कृतज्ञ हूँ कि मेरे चर्चा भर करने से ही गीतों की स्वरलिपि करने का पूरा भार सहज स्वाभाविक ढंग से उन्होंने ले लिया और बड़ी ही सतर्कता और प्रसन्नता से इस कार्य को समय निकाल कर सम्पन्न किया। इसके अतिरिक्त लोक संगीत पर शास्त्रीय विवेचन द्वारा इसकी उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया।

श्रद्धेय डा० बाबूराम सक्सेना डीन इलाहाबाद यूनीवर्सिटी को भला मैं क्या धन्यवाद दूँ? समय समय पर उनकी प्रेरणाओं और आशीर्वादों ने ही इस कार्य के लिए मुझे प्रेरित किया। प्राक्कथन को मै उनका आशीर्वाद ही मानती हूँ।

श्री जगदीश चन्द्र जी गुप्त जो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के एक योग्य लेक्चरर हैं। वे एक सफल वक्ता और कवि होते हुए चित्रकार भी हैं। ऐसा त्रिवेणी का संगम बहुत कम ही व्यक्तियों में देखा गया है मुख पृष्ठ का सुन्दर चित्र बना कर प्रेम पूर्वक जो योगदान उन्होंने दिया है उसके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

इसके अतिरिक्त पाठक पाठिकाओं से प्रार्थना करती हूँ कि इस पुस्तिका की त्रुटियों पर मेरा ध्यान आकर्षित करके दूसरे बड़े संस्करण के लिए मुझे सहयोग दें।

लोक संगीत की शास्त्रीय समीक्षा

लेखक—महेश नारायण सक्सेना एम० ए०, संगीत प्रवीण,
अध्यापक, संगीत-विभाग-प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रायः विद्वानों का यह कथन रहा है कि जैसे जैसे हम पूर्व से पश्चिम के प्रान्तों की ओर बढ़ते हैं, हमें उनके लोकगीतों के साहित्य का स्तर गिरता हुआ और संगीत का स्तर उठता हुआ मिलता है। स्तर का यह अन्तर विशेषतया विविधता और सरसता से सम्बन्धित माना गया है। संभव है कुछ अंशो में यह कथन सत्य हो किन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश के इन गीतों का संगीत देखकर हमें कहना पड़ता है कि उसमें विविधता और सरसता की कोई कमी नहीं। श्रीमती कोकिल जी के आग्रह से मुझे इन गीतों की स्वरलिपियाँ लिखने का सुअवसर मिला। इनमें से कुछ गीत तो स्वय कोकिल जी ने ही अपने कंठ से गा कर सुनाये थे और शेष गीतों की स्वरलिपियाँ ग्रामीण स्त्रियों के कंठ से ही सुन कर की गई हैं। स्वरलिपि लेखन का यह कार्य मुझे विशेष रूप से महत्वपूर्ण लगा है क्योंकि इसने उपर्युक्त कथन की अप्रामाणिकता को सिद्ध करने के अतिरिक्त यह भी सिद्ध किया है कि लोक सङ्गीत न केवल शास्त्रीय संगीत से एक नैसर्गिक व निश्छल सम्बन्ध रखता है वरन् वह अभी भी शास्त्रीय संगीत के लिए अनेक नए रागों को जन्म दे सकता है। यह सभी शास्त्रीय संगीतज्ञों ने स्वीकार किया है कि शास्त्रीय सङ्गीत के अनेक 'राग' लोकगीतों की धुनों के आधार पर निर्मित हुए हैं उदाहरणार्थ, आसा, माँड, झिझोंटी, पहाड़ी, मुलतानी, सोरठ, गुर्जरी और गांधारी आदि। किन्तु मेरा विश्वास है कि अभी तक कम से कम इस बात का कोई नियमित प्रबन्ध नहीं हुआ कि

जिससे देश के विभिन्न प्रान्तों की लोकधुनों से प्रेरणा लेकर नए शास्त्रीय रागों का निर्माण हो। अभी तो वास्तव में लोकगीतों के संगीत-पक्ष पर पूर्ण विवेचन करने वाली कोई पुस्तक भी प्रकाशित नहीं हुई है और न पर्य्याप्त मात्रा में लोकगीतों की स्वरलिपियाँ ही प्रकाशित की गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक में केवल कुछ प्रमुख गीतों की ही स्वरलिपि दी गई है। अन्य गीतों को भी कुछ न कुछ उसी ढंग पर गाया जा सकेगा यद्यपि एक ही प्रकार के लोक गीत के विभिन्न गीतों में स्वरों के संयोजन में भी पर्य्याप्त सूक्ष्म अन्तर मिलता है। स्थान के अभाव से उन सभी स्वरलिपियों को यहाँ नहीं दिया जा सका है, पर यह सत्य है कि अत्यन्त निकट की धुनों में भी प्रायः एक दो ऐसे लय अथवा स्वर-प्रयोग मिल जाते हैं जो एक पृथक प्रभाव उत्पन्न करते हैं और जिनका हम शास्त्रीय संगीत में उपयोग कर सकते हैं। लोकधुनों के अनेक प्रयोगों की सहायता लेकर फ़िल्मी धुनों की रोचकता और उनका प्रभाव बढ़ाने का कार्य वर्षों से किया जा रहा है। फिल्मी गीतों के स्थान पर किसी अन्य प्रकार के जन-गीतों (lightmusic songs) का निर्माण और प्रचलन तभी संभव होगा जब हम लोकधुनों के प्रभावशाली, सुन्दर, स्वाभाविक और चमत्कारपूर्ण स्वर व लय-प्रयोगों की पूरी सहायता लें।

अतः वास्तव में लोक संगीत आज भी शास्त्रीय संगीत व जन-संगीत अथवा भावसंगीत को बहुत कुछ दे सकता है।

इन अवधी लोकगीतों की धुनों में भी वही निश्छल सौन्दर्य और स्वाभाविक सरसता है। कविता और धुन दोनों मिलकर भाव को अभिव्यक्त करते हैं। शब्दों और स्वरों का साम्य प्रशंसनीय है। शास्त्रीय, संगीत के प्रधान तत्त्व,हैं:—राग तत्त्व, ताल तत्त्व, सौन्दर्योत्पादक तत्त्व और विस्तार तत्त्व, लोक गीतों में शास्त्रीय गीतों की भाँति विस्तार नहीं होता किन्तु कुछ गीतों में देर तक एक स्वर को लगाना अथवा आकार

में कुछ लम्बी तान अथवा आलाप लेकर फिर गीत पकड़ लेना कभी कभी मिलता है। तालों का तो निश्चित प्रयोग मिलता है। इस पुस्तक में ही दीपचन्दी (चाँचर), दादरा और कहरवा, ये तीन ताल अद्भुत प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में सभी प्रान्तों के लोकगीत इन तालों का विशेष प्रयोग करते हैं। कभी कभी कुछ गीतों की स्थायी अथवा अन्तरा दीपचन्दी की खाली पर ही समाप्त हो जाते हैं और उसके बाद पुनः प्रथम पंक्ति गाने से पूर्व गायक को सात मात्रायें प्रतीक्षा में स्थायी अथवा अन्तरे के ही अन्तिम स्वर पर रुक कर बितानी पड़ती हैं, ऐसा भी सुना गया है कि ऐसे अवसर पर गायक अन्तिम आवर्तन को अधूरा ही छोड़कर पुनः प्रथम पक्ति पर आ जाता है और ढोलक अथवा तबला वादक उससे मिल जाता है। ऐसे गीत रूपक ताल में भी गाये जा सकते हैं, जो ७ मात्राओं का ताल है। दीपचन्दी अथवा चाँचर ताल में १४ मात्रायें होती हैं, कहरवा ताल भी अधिकतर मध्य अथवा द्रुत लय में प्रयुक्त होता है और उसे चार मात्राओं का मानकर ही प्रयोग में लाते हैं। मध्य लय में वह आठ मात्राओं का भी हो सकता है पर लोकगीतों में चार मात्राओं का ही कहरवा उपयुक्त होता है। दादरा ६ मात्राओं का ताल है।

सौन्दर्योत्पादक तत्त्वों की लोकधुनों में प्रचुरता है। कुछ के उदाहरण यहाँ दे देना उचित होगा :—

(१) मींड→रे म ग रे ; सा प़ ; सा ध़ आदि।

मींड के प्रयोग से भाव की अभिवृद्धि होती है। उससे विशेषकर कोमल भाव अधिक स्पष्ट होते हैं।

(२) कण→ $^{\text{म}}$ग॒ ; $^{\text{प}}$म म — ; प $^{\text{ध}}$प आदि।

(३) दाना अथवा खटका→ग $^{\text{ग}}$रे — ; धनि॒ध — $^{\text{ध}}$प आदि !

(४) मुरकी→म ^{म}ग रे –; मगरे $^{सा}$रे –; मगरेग अथवा (ग);

नीधपध अथवा (ध); मग $^{रे}$गरे, आदि।

(५) छूट→सा प़। प्रायः षड्ज अथवा ऋषभ स्वर पर किसी पंक्ति को समाप्त करते समय गायक अन्त में आवाज को एकाएक नीचे फेंक कर फिर आगे की पंक्ति आरम्भ करता है।

(६) पुकार→यह छूट का वह प्रकार है, जिसमें आवाज किसी ऊँचे स्वर की ओर शीघ्रता से फेंक कर फिर नीचे के किसी स्वर पर आकर अगली पंक्ति आरंभ करते हैं। इसका प्रयोग रामगारी (१) में हुआ है। "रघुनाथ कुंवर के" इतना गाकर "के" अक्षर को षड्ज पर समाप्त करते समय ऋषभ स्वर तक हल्के से खींच कर फिर तुरंत प्रथम पंक्ति का "चरण कमल" मन्द्र सप्तक के पंचम पर पहुँच कर गाते हैं। उसका चिन्ह ⨯ मान सकते हैं यथाः—

सारे	सा	सा	सा	⨯रे
कुंऽ	व	र	के	ऽ

उपर्युक्त सभी सौन्दर्योत्पादक उपकरण के उदाहरण इस पुस्तक में से दिए गए हैं। इनसे सिद्ध होता है कि ये विवाह के गीत संगीत में कितने धनी हैं। इतना ही नहीं, राग सम्बन्धी तत्त्व भी इनमें यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। ग्रामीणों ने इन गीतों का निर्माण किसी राग के बारे में सोचकर तो किया नहीं। ये तो स्वतः निर्मित अथवा प्रस्फुटित धुनें हैं जिनमें विविध रागों का योग स्वतः हो गया है।

लोकधुनों में सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त कोमल गांधार और कोमल निषाद का भी प्रयोग अधिक मिलता है। कम गीतों में ही

कोमल ऋषभ, कोमल धैवत और तीव्र मध्यम का प्रयोग मिलता है। इन तीनों के प्रयोग की प्रचुरता बँगला, मराठी व पंजाबी लोकगीतों में है। गुजराती लोकगीतों में भी इनका प्रयोग मिला है। परन्तु अवध के इन गीतों में भी हमें कोमलधैवत का सुन्दर प्रयोग मिलता है। (पृष्ठ २७ और ११) लोकगीतों की स्वर परिधि प्रायः चार अथवा पाँच स्वरों की ही होती है पर इन गीतों में भी हमें पूरे सप्तक की परिधि भी मिली है, यह उल्लेखनीय बात है। कुछ गीतों में तो मंद्र पंचम से मध्य के कोमल निषाद तक की परिधि है

इन पुस्तक में दिए गीतों में जिन रागों का आभास मिलता है उनमें से मुख्य हैं सोरठ, देस, तिलक कामोद, जयजयवन्ती, काफी, पीलू, झिंझोटी, जौनपुरी और पहाड़ी। अधिकतर प्रत्येक गीत में एक से अधिक रागों के कुछ विशेष उपकरणों का मिश्रण है पर वह मिश्रण नैसर्गिक होने से अत्यन्त मधुर और सफल हुआ है। उससे नए रागों का निर्माण संभव हो जाता है। उदाहरणार्थ पृष्ठ २८ पर मंगल के गीत में जौनपुरी का अंग है "सा रे म प ध प ध म" और कान्हड़ा का अंग है "सा रे नी — नी सा रे —" और इनके अतिरिक्त बीच बीच में अवरोह में शुद्ध गांधार का प्रयोग अलग से मिलता है जो बहुत रोचक लगता है। इस धुन को हम संगीत की दृष्टि से बहुत धनी मानेंगे। इससे हम नए राग का निर्माण कर सकते हैं जो मिश्रण न मालूम होकर एक सर्वथा पृथक व सुन्दर अस्तित्व रख सकता है। एक प्रयास यहाँ किया जाता है। इस नव निर्मित राग का स्वरूप आलाप द्वारा इस प्रकार व्यक्त होगा :—

सा, रे म प, ध प, प ध, पध (प)म, म प म, ग रे सा, म ग रेग, रेग

रेसा, रे (स)नी, नी — सा, नी रे —, सा, नी सा रे (म)ग, रे सा ; सा —।

म —, प मग —, रे म ग — रे सा, रे नी — सा रे ^म^ग — रेसा ।

इतना विस्तार तो धुन से ही मिल जाता है। उत्तरांग के लिए इस स्वरूप से मेल खाने वाली स्वर-चलन अलग से जोड़ी जा सकती है, यथा :—म प, ध नी ध प, धसां, रें नी सां, धनी धप, सां नीध प,

म प, मग, रेसा, रेम, पध पध ^प^म; प म, ग रे सा, रे नी सा ।

इत्यादि । इस राग में यहाँ मध्यम का न्यास महत्वपूर्ण है और जौनपुरी की भाँति कोमल धैवत पर आन्दोलन नहीं होगा ।

इसी प्रकार अन्य गीतों से भी नए रागों की प्रेरणा मिलती है । सोरठा अंग सा, रेम ^ग^ रे अथवा रे म प नीध प में मिलता है । यही देस का भी अंग है पर उसमें गांधार स्पष्ट है । देस का अंग रे म ग रे, रे म प नी ध प ध प, अनेक गीतों में है । ऋषभ का न्यास लोकगीतों में आश्चर्यजनक प्रचुरता के साथ मिलता है। पृष्ठ ८ पर प्रथम गीत (दीपचंदी ताल) में सोरठ, देस व जयजयवंती रागों का आभास मिलता है । दोनों गांधार प्रयुक्त हुए हैं । स्थानाभाव से प्रत्येक गीत के राग गिनना यहाँ संभव नहीं है ।

श्रुति-प्रयोग का एक सुन्दर उदाहरण भी एक गीत में मिलता है और मैंने वह प्रयोग प्रायः ग्रामीणों द्वारा सड़क पर जाते जाते ऊँचे स्वर से गाते हुए सुना है । पृष्ठ ८८ पर दिए गीत में चार स्थानों पर गांधार स्वर के नीचे दो लकीरें खिंची हैं जिनका अर्थ है कि ये गांधार कोमल गांधार से कुछ ऊँचा और शुद्ध गांधार से कुछ नीचा है। शास्त्रीय संगीतज्ञों के लिए इस गांधार का प्रयोग कठिन है पर वे ग्रामीण परम्परागत प्रयोग के अभ्यास के कारण सरलता से उसे गा लेते हैं ।

लोकगीतों का अध्ययन संगीत की दृष्टि से यदि आगे बढ़ाया जाय तो मुझे विश्वास है अभी और भी न जाने कितनी नई नई बातें मिलेंगी जो लोकसंगीत को तो ऊँचा उठायेंगी ही, साथ ही साथ उनसे प्रेरणा लेकर शास्त्रीय संगीत का भंडार भी अधिकाधिक धनी होता जायेगा। मुझे विश्वास है कि कोकिल जी की यह पुस्तक साहित्यिकों तथा संगीतज्ञों दोनों को प्रेरणायें प्रदान करेगी और इससे उन्हें लोक गीतों में छिपी हुई उस निधि को निकालने में सहायता मिलेगी जिसका आज के युग में अत्यन्त महत्व है और जो भारत की जन-संस्कृति का सबसे अधिक स्पष्ट और पूर्ण परिचय देने के योग्य है।

आराधना के गीत

जैसे प्रकृति का कोई ओर छोर नहीं उसी प्रकार प्रकृति से ही उत्पन्न इस लोक हृदय का कोई ओर छोर नहीं। उसकी कल्पनाएँ गगन में मुक्त विहार करने वाले पक्षी की भाँति स्वतन्त्र हैं। भले ही वे बहुत ही ऊपर आकाश के उस पार की खोज लेने में असमर्थ हों पर उनका हृदय मुक्त है कल्पना शक्ति मुक्त है और इसीसे वह अपने को सर्वतो-गामी समझती है। किसी देश की संस्कृति की महत्ता तो केवल उस देश और जाति के साधारण जन के संस्कारों से ही आँकी जा सकती है।

जिस हिन्दू धर्म में तैंतीस करोड़ देवता माने गये हैं उसी धर्म में एक आदि शक्ति को इतनी महत्ता दी गई है कि उससे बड़ा कोई है ही नहीं। स्त्रियाँ विवाह आदि सभी शुभ कर्मों में सर्व प्रथम आदि शक्ति की ही आराधना और उपासना करतीं हैं। यह भी एक रहस्य है। अनेकेश्वर वादी होते हुये भी ये हिन्दू एकेश्वरवादी हैं। और एकेश्वरवादी होते हुए भी अनेकेश्वरवादी। शक्ति देवताओं से भी बड़ी है। देवता भी जब राक्षसों को वश में नहीं कर पाते तो देवी ही उनका संहार कर पाती हैं। मधु, कैटभ आदि महान असुरों का लक्ष्मीने ही संहार किया।

इस प्रकार मुख्य शक्तियाँ तीन मानी गई हैं। शिवा, लक्ष्मी और सरस्वती। फिर शिवा के अनेकों रूप काली, चंडी और दुर्गा इत्यादि हैं। इसी प्रकार लक्ष्मी और सरस्वती के भी अनेकों रूप हैं।

इस माया ने ही इस क्रिया शील जगत को उत्पन्न किया है। वह देवताओं की भाँति केवल गुणग्राहिका ही नहीं है। संसार के भले बुरे, रोगी, कोढ़ी, ग़रीब, अमीर सभी उसके पुत्र हैं और सबका विकास ही उसका ध्येय है। इस संसार रूपी महान राष्ट्र की सब प्रकार से सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी उसी शक्ति के कंधों पर है।

देवता लोग तो मंत्रियों और महा मंत्रियों का कार्य करते हैं। वह राज्य की माता है रानी नहीं। राज्य में सबसे बड़ा काम शत्रुओं से रक्षा पाने का ही समझा जाता है। बाहरी राष्ट्रों से अपना सम्बन्ध तथा शत्रुओं से रक्षा। भीतरी काम चलता ही रहता है। इस रक्षा के साथ संहार अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। इसलिए दुर्गा या काली माता का ही दर्जा सबसे ऊँचा है। पर इस राष्ट्र की अन्य राष्ट्र वालों से शत्रुता नहीं है। क्योंकि जगत् माता के सभी पुत्र हैं। शत्रुता केवल उन रोगों, महामारियों तथा नाशों के तत्वों से है जो उसके पुत्र का विकास रोकने वाले हैं, भले ही उनका माध्यम मनुष्य हो या प्रकृति। यह काम पिता से अधिक माता ही कर पाती है। किसी मादा ने कहीं बच्चे दिए हों, आप अचानक उसके पास से निकल जाइये। नर एक बार चुप पड़ा रहेगा पर मादा आपके ऊपर सवार हो जायगी। आपको उस रास्ते जाना मुश्किल कर देगी। फिर देवी तो जगत् जननी हैं। पुत्र की उत्पति के बाद माँ कभी निश्चिन्त होकर सोती नहीं क्योंकि वह सन्तान के प्रेम में ऐसी पगी रहती है कि उसे प्रतिक्षण उसकी रक्षा का ख्याल रहता है। माँ का सदा छोटे बड़े सबके ऊपर कृपा का हाथ रहता है फिर भला उसे छोड़ यह लोक-हृदय जिसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है किसे याद करे।

ऐमी धारणा से ही शायद हमारे यहाँ विवाहादि अवसरों पर सर्व प्रथम देवी के गीत गाये जाते हैं।

देवी के अतिरिक्त इन अवसरों पर गणेश जी को बड़ा महत्व मिलता है। गणेश जी ही एक ऐसे सर्वशक्तिमान देवता हैं जो विघ्नकर्ता होते हुये भी विघ्ननाश के लिए स्वयं ही बुलाये जाते हैं। प्रत्येक अवसर के आरम्भ में हम उनका पूजन करते हैं। यह भी एक मनोवैज्ञानिक रहस्य है कि सबसे कुरूप होते हुए भी उनका इतना मान है। वे देवता हों या अपदेवता, आर्य रहे हों या अनार्य सम्पूर्ण भारत में तो उनकी पूजा होती ही है चीन, जापान, तिब्बत, बाली, जावा इत्यादि देशों में जहाँ जहाँ बौद्ध धर्म फैला है वहाँ भी उनका बड़ा ही मान है। जैन धर्म में भी उनका किसी न किसी रूप में सम्मान होता है।

हिन्दू धर्म में जैसे आज वे सिर मौर हो गए हैं वैसे सदा से नहीं रहे होंगे। वैदिक काल में तो हम उन्हें नहीं पाते। पौराणिक काल में ही उनकी उत्पत्ति हुई। पर कभी के विघ्नकर्ता गणेश आज के विघ्न-हर्ता हो गए यह तो प्रत्यक्ष ही है। उन्होंने स्वयं अपना सुधार किया या हमारी श्रद्धा ने उनका सुधार किया यह नहीं कहा जा सकता। उनकी रूप रेखा और जीवन वृत्तान्त से यह तो पता चलता ही है कि यह लोक-हृदय कितना विनोदी, कल्पना जड़ित और रहस्य का उपासक है।

गणेश जी पार्वती जी के पुत्र हैं। पार्वती जी के द्वारा उन्हें इतना सम्मान दिलाया गया। एक प्रकार से यह भी शक्ति का ही प्रताप है। और दूसरी बड़ी बात यह है कि वे सर्व विघ्नों के स्वामी हैं। उनको प्रसन्न कर लेने से विघ्न मात्र का भय नहीं रहता। संसार विघ्नों और

निराशाओं का ही नाम है। मनुष्य उसके विपरीत जाना चाहता है। लोक हृदय यह तो जानता है कि देवता ही उसे उसकी वांच्छित दिशा में ले जाने वाले हैं। पर यह भी खूब समझता है कि संसार के विघ्न रूपी दलदल से वे पूर्णरूपेण उसे निकाल न पाएँगे। संसार की दुर्गन्धि और नश्वरता पर गणेश तथा गणेश माता का ही पूर्ण आधिपत्य है।

नागरिकता और संस्कृति का रंग जितना ही हमारे ऊपर चढ़ता जाता है उतना ही भड़कीलापन बढ़ता जाता है पर स्वाभाविकता से हम दूर हटते जाते हैं। नागरिकता के आवरण में बहुतसी बातें छिपा डाली जाती हैं, बहुत सी कही ही नही जातीं और जो कुछ कही भी जाती हैं वे शैली के चमत्कार से उतनी हृदयग्राही नहीं हो पातीं।

निर्गुण उपासना ज्ञान की वस्तु है। ज्ञान की थोड़ी ही चूक से वह रसातल तक जा सकती है। आधुनिक भ्रष्टाचार की बहुत कुछ जिम्मेदारी इस नागरिक ज्ञान की लादी हुई निर्गुणता पर ही है।

सगुण उपासना में विनम्रता है, कल्पना है और है कलाकारिता। इस सगुण उपासना ने ही भारत के धर्म और संस्कृति को एक गाँठ में बाँध रक्खा है। यह संस्कृति रीति-रिवाजों के द्वारा संस्कारों में प्रवेश कर जाती है। संस्कार परम्परागत होते हैं। वे छूटते नहीं। धर्म मनुष्य जब चाहे बदल डाले पर संस्कार नहीं बदल सकते।

मनुष्य कला का पुजारी होता है। यही मनुष्य मात्र के विकास की दिशा है। भारतीय सगुणोपासना द्वारा कला का सर्वतोमुखी विकास प्रत्येक कला की शाखा में हुआ है। यह हिन्दू धर्म, रीति-रवाज कला

और सौन्दर्य में हमारे संस्कार बन कर भारत के जलवायु तथा उसकी मिट्टी में समा गया है।

इस प्रकार इस लोक हृदय की व्यापक कलापूर्ण और सुन्दर आस्थाओं से यह हिन्दू धर्म भरा पड़ा है। विवाहादि में हमारे यहाँ सूर्यदेवता तथा संध्या देवी का भी आवाहन तथा उपासना होती है। प्रकाश का महत्व और उनके तप की कथाएँ तो वैदिक काल से पुराणों और महाभारत तथा रामायण काल में होती हुई आज तक चली ही आ रही हैं। संध्या देवी भी सूर्य भगवान की ही शान्त शक्ति हैं। उनकी भी उपासना होती है। इसके अतिरिक्त ये दो वेलाएँ प्रातः और संध्या, इन पर दुनिया के संपूर्ण कवि मोहित हैं। कविता के लिए तो ये अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण विषय हैं।

इसके अतिरिक्त फिर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की आराधना का तो ओर छोर है ही नहीं। अब इस श्रद्धा का रस लोक की अटपटी भाषा तथा भावव्यंजना से लीजिए।

—०—

त्वं परा प्रकृतिः साक्षात् ब्रह्मणः परमात्मनः ।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता ।
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ॥
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमोनमः ।
चिति रूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ॥

[जगत् जननी की भक्ति में भक्त जिस प्रकार व्याकुल रहता है जगत् जननी भी अपने भक्त के लिए उसी प्रकार व्याकुल रहती है। देवी ने गलियों में यह चर्चा सुनी है कि उनके भक्त ने विवाह रूपी महा यज्ञ रचा है। जगतमाता सारे विघ्नों के निवारण के लिए वहाँ शीघ्राति शीघ्र पहुँचना चाहती हैं। भक्त माता को पाकर पूजन की भरसक सारी सामग्री एकत्रित करने का यत्न करता है।]

गलियाँ की गलियाँ फिरहिं भवानी खोरिया खोरिया पूछैं बात,
केकरे दुलरुआ कै यह जगि रोपी है हम जगि देखन जाव।
गलियाँ की गलियाँ फिरहिं भवानी खोरिया सुनी है यह बात,
दशरथ दुलरुआ कै यह जगि रोपी है हम जगि देखन जाब।
आओ भवानी बैइठो मोरे अँगना देहौं सतरँगिया बिछाय,
घिउ गुड़ से मइया होम करइहौं धुँअना अकासै जाय।
दही की दहेंड़ी मइया अँगने धरउबै यह जग पूरन होय,
सेंदुर अच्छत मइया तुमका चढ़उबै यह जगि पूरन होय।

नोट:—जिसके लड़के का बिवाह हो 'दशरथ' की जगह उसका तथा और परिवार वालों का नाम लिया जा सकता है।

खोरिया = गली के भीतर दर गली, छोटी गली।

सतरँगिया = सात रंगों से तय्यार किया हुआ सुन्दर बिछौना।

ताल दीपचंदी (१४ मात्रा)

धा धिं ऽ	धा गे तिं ऽ	ता तिं ऽ	धा गे धिं ऽ
×	२	०	३

स्थाई

सा सा —	रे — म —	मग रेग —	रे — रे —
ग लि ऽ	य ऽ न ऽ	ग ऽ लिऽ ऽ	य ऽ न ऽ
×	२	०	३

सा रे म	म — प नी	नीध पध —	प — — —
फि र ऽ	हिं ऽ भ ऽ	वा ऽ ऽ ऽ ऽ	नी ऽ ऽ ऽ
×	२	०	३

म म प	प — प धप	प प म	म प म रे
खो रि ऽ	या — खो ऽऽ	रि या ऽ	पू ऽ छ हिं
×	२	०	३

रे सा —	— — सा —	......
बा ऽ ऽ	ऽ ऽ त ऽ	
×	२	

अंतरा

सा रे म —	म — प नी	नीध पध —	प — प म
के क ऽ ऽ	रे ऽ दु ऽ	ल ऽ रु ऽ ऽ	आ ऽ कै ऽ
×	२	×	३

प म रे	रे ग रे सा	सा — रे	रे म म —
य ह ऽ	ज ऽ ग ऽ	रो ऽ ऽ	पी ऽ है ऽ
×	२	०	३

म म प	म — म ग	रे — —	रे ग रे —	रे — —	— — रे —
ह म ऽ	ज ऽ गि ऽ	दे ऽ ऽ	ख ऽ न ऽ	जा ऽ ऽ	ऽ ऽ ब्र ऽ
×	२	०	३	×	२

(२)

[सारे देवता लोग इन आदि शक्ति देवियों के वश में ही रहते हैं। देवता तो वश में हैं ही विघ्नकारी सारी आसुरी शक्तियों को भी असुर संहारिणी ये देवियाँ ही अपने सात्विक क्रोध से वश में कर पाती हैं। अतः ऐसे महान कार्यों में उन्हीं का आवाहन किया जाता है।]

गावौं मैं माता, गावौं मैं भवानी लेहुँ सारदा मइया नाम।
तुमरी सरन मइया, मैं जग रोपेउँ मोरी जगि पूरन होय॥

[इसी प्रकार सारदा के स्थान पर अन्य सभी देवियों के नाम लेकर गाते हैं।]

नोट :—यों तो आदि शक्ति ने अपने को तीन रूपों में बाँटा है संहार, पालन, और सृजन इस प्रकार शिव की शक्ति का नाम है—भवानी या पार्वती—इनके ही अनेकों रूप हैं। काली तथा दुर्गा आदि। दूसरी पालन कर्त्री जगदम्बा स्वरूप हैं। यह शक्ति विष्णु की है जो महालक्ष्मी के नाम से प्रख्यात हैं। इनके भी अनेकों नाम हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा की शक्ति का साकार स्वरूप सरस्वती जी हैं। इस प्रकार इच्छानुसार जिन जिन देवी के स्वरूपों पर भक्त की श्रद्धा हो उनका नाम लेकर उस गीत को गा सकते हैं।

[इस गीत में भक्त देवी के नाना रूपों से चित्त हटा कर उनके किसी एक रूप पर चित्त को एकाग्र करके उनके चारों ओर फैले हुये पावन वातावरण का चिन्तन कर रहा है ।]

महरानी मैया बरदानी कि जय जय विन्ध्याचल रानी।
मोरी महरानी । महरानी०
एरी देवा पहाड़ के ऊपर, एरी अम्बे पहाड़ के ऊपर
वहाँ मन्दिर बना है खासा, जहाँ जग तारनि का वासा।
मोरी महरानी । महरानी०
एरी देवा तले बहै गंगा, एरी अम्बे तले बहै गंगा
गंगा का निर्मल पानी, नहाय मोरी आदि जोति रानी ।
मोरी महरानी । महरानी०
एरी देवा की महिमा ऐसी, एरी अम्बे की महिमा ऐसी,
जिन जगत जगत जानी, कि महिमा तीन लोक मानी ।
मोरी महरानी । महरानी०
एरी देवा चँदन की चौकी, एरी अम्बे चँदन की चौकी,
चौकी में जड़े हीरा, चाबि रहीं पानों के बीड़ा ।
मोरी महरानी । महरानी०

नोट—मध्यम को सा मान कर यहाँ गाया जायगा । (एरी देवा पहाड़ के ऊपर) इतनी लाइन को दोहराते भी हैं 'देवा' की जगह दोहराते समय 'अम्बे' कह देते हैं। ऐसे ही सभी कड़ियों में पहली लाइन दोहराते हैं ।

ताल कहरवा (४ मात्रा)

स्थाई

नी सा सा रे	म ग — रे	सा — रे —	म ग — ग	ग रे सा सा
म ह रा ऽ	नी मै ऽ या	ब र दा ऽ	नी ऽ ऽ कि	ज य ज य
×	×	×	×	×

नी — सा रे	म ग रे सा —	सा — — म	ग रे सा सा	नी — सा —
वि ऽ ध्या ऽ	च ल रा ऽ ऽ	नी ऽ ऽ मो	ऽ रि म ह	रा ऽ नी ऽ
×	×	×	×	×

अंतरा

सा सा रे ग	(प)म म — ग	ग रे सा रे	नी — सा सा
ए री दे ऽ	वा ऽ ऽ प	हा ऽ ड़ के	ऊ ऽ प र
×	×	×	×

— — नी सा	म ग — ग	रे ग सा रे	ग — म —
ऽ ऽ ज हाँ	म न्दिर ऽ ब	ना ऽ है ऽ	खा ऽ सा ऽ
×	×	×	×

— म ग म	ग म प नी	ध प (म)ग रे	(सा)नी — सा —
ऽ व हाँ ऽ	ज ग ता ऽ	र नि का ऽ	वा ऽ सा ऽ
×	×	×	×

— ग — रे	सा रे नी —	सा — — —
ऽ मो ऽ रि	म ह रा ऽ	नी ऽ ऽ ऽ
×	×	×

(४)

[देवी के चारो ओर फैले हुए वातावरण में भक्त इतना मुग्ध हो जाता है कि अब उसे अपनी स्थिति की सुधि नहीं है। वह देवी की सेवा में ही पूर्ण सुख का अनुभव करता है !]

देवी का दरबार हम को भावै।
दूध नहीं भावै दहिउ नहीं भावै,
देवी तेरा नीर हमको भावै। देवी का०
खाँड़ नहीं भावै चिरौंजी नहीं भावै,
देवी तेरी खाक हमको भावै। देवी का०
महला न भावै दुमहला न भावै,
देवी तेरा मन्दिर हमको भावै। देवी का०

(५)

[इस गीत में महरानी के पालिका स्वरूप का सुन्दर चित्र है। महरानी बाग बगीचों और महलों में अपने स्वागत की भूखी नहीं है। माँ अपनी निर्बल दुर्बल, भीरु तथा अज्ञान सन्तति के प्रेम में ही पगी रहती है।]

लाले लाले घोड़वा मइया लाल खरहुआँ,
तेहि चढ़ि आवइँ जग तारनि माय।
की मइया उतरहिं बाग बगैचा,
की उतरहिं फुलवारि।

ना मइया उतरहिं बाग बगैचा

ना उतरहिं फुलवारि।

मइया मोरी उतरहिं गंगा के किनरवा,

करै लागीं गंगा असनान।

नहाइ धोइ मइया ठाढ़ी भई हैं,

देवै लागीं बम्हना के दान।

बम्हना के दिहिन मइया सोने का जनेउआ,

बम्हनी का अबध सिंधोर।

भटवा का दिहिन मइया चढ़ने का घोड़वा,

भटिनी का लहर पटोर।

बूढ़े का नेवाजिन मइया ज्वाने का नेवाजिन

बलका नेवाजन आई माय।

लूले का पैर मइया कोढ़िया का काया,

मनई का दिहिन जीवन दान।

(६)

[देवी को स्वभाव से ही सारी बहुमूल्य सुन्दर तथा कलापूर्ण वस्तुएँ पसन्द हैं। उनके पास किसी वस्तु की कमी नहीं है। सभी को वे सब कुछ देती हैं पर उसे क्यों भूल गई हैं भक्त का हृदय यही सोच कर अधीर है।]

हमारी सुधि क्यों न लई जगदम्बे।

काहे का मइया भवन बना है,

काहे के चारों खम्भे। हाँ हाँ री अम्बे। हमारी०

सोने का देवा भवन बना है,
रतन जड़ाऊ खम्भे। हाँ हाँ री अम्बे। हमारी०
देवतन में महादेव बड़े हैं,
तारन में बड़े चन्दे। हाँ हाँ री अम्बे। हमारी०
पातन में मइया पान बड़े हैं,
तीरथ में बड़ी गंगे। हाँ हाँ री अम्बे। हमारी०
जोइ जोइ ध्यावै सोइ फल पावे,
कोऊ न बेमुख जावै। हाँ हाँ री अम्बे। हमारी०

(७)

[लोक-हृदय की संस्कृत भावना का यह एक सुन्दर चित्र है। किसी हिन्दू स्त्री से यदि कहा जाय कि तुम जो चाहे वर माँगो तो सर्व प्रथम वह हाथ में चार हरी चूरियाँ और माँग में सिंदूर के सिवा क्या माँगेगी ?

हाँ इस गीत में हमारे समाज की उस खेद जनक स्थिति का दर्शन होता है जब कि विदेशियों के आक्रमणों के कारण स्त्रियों की रक्षा एक भार स्वरूप हो गई थी। तब स्त्रियाँ सन्तान माँगते समय अधिकतर लड़के ही माँगती थीं।]

माँगेउँ बरदान देवी के मँडिलवा भीतर।
माँगेउँ मैं हरी हरी चूरियाँ, मैं हरी हरी चूरियाँ,
सेंदुरा भरि माँग, देवी के मँडिलवा भीतर। माँगेउँ ·····
माँगेउँ मैं दस पाँच देवरा मैं दस पाँच देवरा,
ननदो अकेलि देवी के मँडिलवा भीतर। मागेउँ·····

माँगेउँ मैं सात पाँच बेटा, मैं सात पाँच बेटा,
बेटी अकेलि देवी के मँडिलवा भीतर। माँगेउँ······
माँगेउँ मैं सात पाँच भइया, मैं सात पाँच भइया,
बहिनी अकेलि देवी के मँडिलवा भीतर। माँगेउँ ·····

(८)

[राम के प्रति सीता को मग्न देख देवी के अपार प्रेम का एक नन्हा सा चित्र यहाँ मिलता है। प्रेम मग्न सीता को पूजा के लिए फूल तोड़ने में दोपहर हो गई। माला गूँथते गूँथते संध्या हो गई। इस भक्ति के वश होकर ही सीता को यह विश्वास था कि मुझे महरानी से मनमाना वरदान मिलेगा। महरानी भी भक्त की मुग्धदशा देख कर भक्त के वश हो गईं।]

देउ न मोरी मइया बाँसे कै डेलरिया,
फुलवा लोढ़न हम जाब।
फुलवा लोढ़त भई खड़ी दुपहरिया,
हरवा गछत भई साँझ।
घुमरि घुमरि सीता फुलवा चढ़ावैं,
गौरा रानी देइँ असीस।
जौन मँगन तुम माँगौ सितल देई,
उहई मँगन हम देब।
अन धन चाहै जो दिहेउ गौरा रानी,
स्वामी दिहेउ सिरीराम।
पार लगावैं जे मोर नेवरिया,
जेहि देखि हिरदै जुड़ाइ।

[ऐसी कठिन जिम्मेदारी के अवसर में भीड़ और परेशानियों से घबड़ा कर क्रोध आना भी संभव है, झुँझलाहट भी आ सकती है और कभी प्रेम और कभी वैराग वश होकर किंकर्तव्य मूढ़ता भी आ सकती है। इसी लिए सदा स्थिरचित्त रहने वाले विनायक से सुधि बुधि देने की प्रार्थना की जा रही है।]

गौरी के पूत विनायक, सुधि बुधि देहु,
कृष्ण चरित गुन गाइ, महाजस लेहु।
बोलहु भइया बहिनिया गोतिन दुइ चार,
बोलहु राजा भीषम ठाकुर धीय कुआँर।
बोलहु नउआ, बरिया शहर केरे लोग,
बोलहु विप्र सुपंडित लगन लिखाय।
जाएहु विप्र द्वारिकै लगन लिखाय,
कुंडिनपुर की रानी रुकमिनि जिनको बियाह।
बकरा जो मारे हैं डेढ़ सौ, हरिन पचास,
भले भले विंजन रींधि रचौ जेवनार।
घोड़े सजे हैं जो डेढ़ सौ हाथी पचास,
बड़े बड़े साजन साजि के आई बरात।
साजन हो, मेरे साजन, बिनती हमार,
रुकमिनि हैं मेरी बारी, कीजै प्रतिपाल।
ऐसी बात कहा कहिये, सजन हमार,
सिगरी द्वारिका की रानी, हैं प्रान अधार।

[इस गीत को गणपति की आराधना में तो गाते ही हैं पर वर को बारात के लिए भेजते समय भी गाते हैं ।]

मनावहु रे गुरु गनपति देव, विनायक देव,
जिनरे छयल जग मोहि लियो ।
जग मोहि लियो रानी रुकमिनि कन्त, सुहागिनि कन्त,
जिनरे छयल जग मोहि लियो ।
जड़िया भइयउ हो, तुमतो चतुर सुजान, छयल सुजान,
चीरा जो लाए जगामग हो ।
चीरा बाँधैंगे हो, दुलहिन देई कन्त, सुहागिन कन्त,
जिनरे छयल जग मोहि लियो ।
दर्जी भइयउ हो, तुम तो चतुर सुजान, छयल सुजान,
जामा जो लाये जगामग हो ।
जामा पहिनंगे हो, रानी दुलहिन कन्त, सुहागिनि कन्त,
जिनरे छयल जग मोहि लियो ।
बजाज भइयउ हो ... ...
पटुका जो लाए जगामग हो ।
पटुका बाँधैंगे ... ...
जिनरे छयल जग मोहि लियो ।
माली भइयउ हो ... ...
सेहरा जो ... ...
सेहरा बाँधैंगे ... ...

जिनरे ... ... लियो।

सोनरा भइयउ हो ... ...

मोती जो ... ...

मोती पहिनैंगे ... ...

जिनरे ... ... लियो।

मोची भइयउ हो ... ...

मोजा जो ... ...

मोजा ... ...

जिनरे ... ... लियो।

मोगल भइयउ हो ... ...

घोड़ा जो ... ...

घोड़ा चढ़ैंगे ... ...

जिनरे ... लियो।

कहरा भइयउ हो ... ...

डोला जो ... ...

डोला चढ़ैंगे ... ...

जिनरे ... लियो।

———

ताल दीपचंदी (मात्रा १४)

स्थायी

ध़ सा	सा — —	रे ग रे —	सा — —	प — म ग
म ऽ	ना ऽ ऽ	व ऽ हु ऽ	रे ऽ ऽ	गु ऽ रु ऽ
	×	२	०	३

रे ग —	रे — सा —	ध़ सा —	सा — रे म
ग न ऽ	प ऽ ति ऽ	दे ऽ ऽ	व ऽ त्रि ऽ
×	२	०	३

ग रे —	रे — सा —	स प़ —	सा — सा —
ना ऽ ऽ	य ऽ क ऽ	दे ऽ ऽ	व ऽ अ ब
×	२	०	३

ध़ सा —	रे ग रे सा	रे प ध प	म म ग रे सा —
जि न ऽ	रे ऽ छ ऽ	य ल ऽ ऽ	ज ऽ ऽ ग ऽ ऽ
×	२	०	३

रे ग म ग —	रे — सा —	सा प़ —	सा — सा —
मोऽ ऽ ऽ ऽ	हि ऽ लि ऽ	यो ऽ ऽ	अ ऽ ब ऽ
×	२	०	३

जिनरे छयल जग मोहि लियो ।

अंतरा

प — ग प	ध नी ध —	प ध प म म ग	रे सा — —
ज ऽ ग ऽ	मो ऽ ऽ ऽ	हि ऽ ऽ लि ऽ ऽ	यो ऽ ऽ ऽ
३	×	२	०

प प प ग	प नी ध	प ध प म म ग	रे सा –
ग ऽ नी ऽ	रु क ऽ	मि ऽ ऽ नि ऽ ऽ	कं ऽ ऽ
३	×	२	०

रे म म ग	रे म म ग	रे सा – सा –	प – –	प सा सा सा
त ऽ मु ऽ	हा ऽ ऽ ऽ	गि ऽ ऽ नि ऽ	कं ऽ ऽ	त ऽ अ ब
३	×	२	०	

जिनरे छयल०

ये गीत दीपचंदी (१४ मात्रा) अथवा चाँचर के ठेका पर चलते हैं किन्तु बहुधा मात्राओं की कमी व्यवहार में मिलती है। अतः ७ मात्राओं के ताल रूपक में इसे बिठाया जा सकता है। दीपचंदी में गाते समय ७ मात्रा अधिक रुकना पड़ेगा।

———

[गणपति की आराधना के बाद हिन्दू लोक का किसान हृदय भला सूर्य देवता को कैसे भूल सकता है ।]

भएउ बिहान संख धुनि बाजी,
उठे हैं देव आदित रथ साजइँ।
पूरब उवहिं पछिम दिसि जाहिं रे,
जिनके किरन चहूँ दिसि राजइँ।
आनहु चन्दन काठ की चउकी रे,
उअत सुरुज देव आसन दीजै।
आनहु मौल सिरिहिं कर दतुइन,
अपने सुरुज देव दतुइन दीजै।
आनहु गंग, जमुन कर पानी,
अँचहि सुरुज असनान करावहु।
आनहु नेति करन कर धोतिया,
पहिरैं सुरुज देव, बसतर दीजै।
खाँड, चिरौंजी, गरीउ, छुहारे,
लेहु सुरुज देव भोजन कीजै।
मुट मुर, मुट मुर, खरिका कीजै,
गङ्गा जल लै, अँचवन कीजै।
आनहु मघई का पान पुराना,
उअत सुरुज देव बीड़ा लीजै।
आनहु तोसक सेज सुपेदी,

आइ सुरुज बिसरामहु कीजै।
सातहु स्याम करन लै घोरे,
उअत सुरुज असवारी कीजै।
धनि माता जो सुरुज देव जायो,
धन्नि सुहागिन जिन (ऐसो) बर पायो।
धनि वई माता कवन पूत जायो,
धन्नि सुहागिन कवन बर पायो।

[जिसका विवाह हो रहा है वह सूर्य की भाँति तेजवान है। धन्य है वह स्त्री जो पति स्वरूप उसे पाएगी। धन्य है वह माता जिसने उसे उत्पन्न किया है।]

प्राती

(१२)

पुरखों को जगाने के गीत

[इन गीतो को बड़े भोर में गा कर घर के मृत पुरखो को स्त्रियाँ जगाती हैं। बेटी के विवाह में सब कुछ व्यय करने से आजा, बाबा सब अपने को इतना निर्धन समझ लेते हैं कि कहते है 'मेरे सब ऊसर होकर पड़ा है' इस पर जगाने वाली स्त्री कहती है नहीं ऐसा अशुभ मुंह से न निकालो बेटी के नैहर और ससुराल दोनों ओर लक्ष्मी भरी पड़ी है। वेदना और ढाढस का अछूता उदाहरण है]

अरे उठहु न उठहु कवन बाबू सोनवा झँझर लेइ
मँहवा पखारहु, सोरही रूँबारहु हो,

अरे नहीं मोरे गइया न भैंसी, त सब मोरे ऊसर।
अरे दहयिा जे बाढ़ो मटकवन दुधवा कुँड़न बाढ़ो हो,
अरे बाढ़ो बेटी देई के नइहर अउरउ सासुर।

[इसी प्रकार सब बड़े बूढ़ों का नाम ले ले कर उन्हें जगाते हैं और इसी प्रकार बेटी का नाम लेकर वैभव बढ़ने का संकेत करते हैं।]

(१३)

[आप कभी गङ्गा के तट पर सोएँ तो यह मँगरी मछली ही आप को सब से पहले अपने कल बल से जगा देगी। ये मछलियाँ बड़े सवेरे उठ कर किलोल करने लगती हैं। या तो तान लगाते हुए और छप छप करते हुए केवट आपको जगा देंगे। इन गीतों में प्रकृति का इतना नैसर्गिक चित्रण रहता है कि उसके साथ एकता का अनुभव होने लगता है।]

माई गङ्गा गुँसाई सोवत के जगावहिं हो
मँगुरिन माछरी, केवट नइया लै जगावहीं।
तुमहीं कवन बाबू सोवत के जगावहिं हो
पुतवन, पतोहियन, बहुअरि लै जगावहिं

इसी प्रकार इसमें भी सबका नाम ले कर जगाते हैं। इस गीत को गंगा के जगाने में भी गाते हैं।

(१४)

[लड़के के यहाँ जिस दिन बारात चलने को होती हैं उस दिन भोर में स्त्रियाँ इसी गीत को गाकर जगाती हैं]

गङ्गा नदी के ईरे तीरे दुलहा पुकारइ हो,
बाजा पठइ देउ नाव नेवरिया तौ चढ़ि बियहन जाबै।

ना मोरे नाव नेवरिया नाहीं घर केवट हो,
जेकरे बियहवा के साध पँवरि दह जाइहि ।
भीजै मोरा जामा से पटुका और सिर मौरा हो,
आजा भीजै मोर सोरहो सिंगार बियहवा के साधन,
कमिनिया के साधन ।
देहौं मैं जामा से पटुका औ सिर कै मौरा हो,
बेटा देहौ मैं सोरहो सिंगार बियहवा के कारन ।

संध्या

(१५)

[संध्या प्रति दिन शाम को गाते हैं]

तुमहूँ जो संझा गोसाइन,
मोरी ठकुराइन, को न तुमहीं नवैं ।
महादेव ईश्वर गनपति,
देव के देव, उनहूँ तुमहीं नवैं ।
तिनकी भगति महँ आगरि,
जोड़ि दुहूँकर, विधिवत विनती करौं ।
तिन मिलि दीन्ह असीस,
दुलहिन दुलहा चिरजीवैं ।
तुम जुग जुग जीवो ···,
······दुलहा ··· दुलही सोहागिन ।
तुम जुग जुग ············ ।

[ऊपर की लाइन में दुलहा दुलहिन और नीचे उनके माता पिता का नाम लिया जायगा ।]

शुभ घड़ी

(१६)

[देवी देवताओं की आराधना कर लेने पर शुद्ध हुआ लोक का प्रेम तरल हृदय मानो सारे आस पास के वातावरण और पड़ोसियों का वैर भाव भूल कर उनसे शुभ वचन बोलने की ही प्रार्थना करता है।

यदि हम विवाह के महत्त्वपूर्ण अवसर पर अपनी दादी, माँ और चाची इत्यादि की इन महत्वपूर्ण अमूल्य शुभ कामनाओं को न जोड़ें तो विवाह के अन्तर्गत क्या शेष रहेगा कहा नहीं जा सकता। लोक गीतों में हमें पालू और मुक्त विचरने वाले पशु पक्षियों से सम्बोधन करके कहे जाने वाले उद्गार बहुत मिलते हैं। जिनकी स्वाभाविकता के मुकाबिले भावों के निवेदन में कोई भी नागरिक कविता के विचार नहीं ठहर पाते।]

शुभ बोलौ चिरई तुम शुभ बोलौ शुभ बोलौ कुँआ पनिहारि।
शुभ बोलौ परबत सुगना सगुन लै उड़ौ दिशि चारि।
शुभ बोलौ टोला परोसिन औरौ सगलगवारि।
शुभ बोलौ माया कवन देई तुम्हरे सगुन सुख होइ।

(इसके बाद नाते की सभी स्त्रियों का नाम लेकर इसे गाते हैं तिलक के समय तथा प्रत्येक सगुन के समय ये गीत गाए जाते हैं।)

(१७)

शुभ घड़ी लगन गनाइये,
ब्याह रचो वृषभान जी।

हरे हरे बाँस कटाइये;
कदली खम्भ गड़ाइये। ब्याह०।
पानन मँड़वा छवाइये,
लवँगन गूँध दिवाइये। ब्याह०।
सुरभी गोबर लिपवाइये,
गज मोतिन चौक पुराइये। ब्याह०।
सोने को कलस धराइये,
चौमुख दिअना बराइये। ब्याह०।
सतरँग जाजिम बिछाइये,
साजन लोग बुलाइये। ब्याह०।
ब्याहन आये लाड़िले,
चढ़ चढ़ लिल्ली घोड़िया। ब्याह०।
देखन आये देवता,
चढ़ि-चढ़ि व्योम बिमान से। ब्याह०।
दुलहा श्रीपति साँवरे,
दुलहिन राधिका प्यारी है। ब्याह०।

———

मंगल

विवाह में सब प्रथम शिव या राम का विवाह गाए जाने की प्रथा है। उसके उपरान्त जिसका विवाह हो उसका तथा उसके परिवार वालों का नाम ले कर उसका विवाह गाया जाता है।

हां प्रत्येक रीति रस्म में लोक का ऐसा विश्वास है कि सब कुछ पहले भगवान को समर्पण करके फिर प्रसाद रूप में ही सारे रसों का उपभोग मनुष्य को करना चाहिए। इस प्रकार की भावना से केवल मंगल ही होना सम्भव है। क्योंकि मंगल है तो आनन्द में भी भगवान भागीदार होते हैं, और यदि अमंगल भी हुआ जहाँ दूसरा साथ नहीं देता, उसमें भी वे पूरा हिस्सा बँटाते हैं। उन्हीं को सब कुछ अर्पण है। इस प्रकार दुखातिरेक और सुखातिरेक से कभी कलेजा फटने वाली घटना होने की सम्भावना नही रहती।

यहाँ पर कुछ राम सम्बन्धी और कुछ शिव सम्बन्धी मंगल दिए जा रहे हैं।

हमने तुलसी दास जी लिखित पार्वती मंगल और जानकी मंगल जो विवाह के अवसर पर गाए जाते हैं उनको अंश रूप में दिया है। यद्यपि इन्हें गाने का रिवाज बहुत कम हो गया है पर ये इतने सुन्दर हैं कि उन्हें पुनः जारी करने के लिए मन ललचा उठता है। ये तो अलग से छपे हुए मिलते हैं अतः यहाँ स्थानाभाव से हमने थोड़ा सा अंश दिया है।

नींद न भूख पियास सरिस निसि वासार,
नयन नीर मुख नाम पुलक तनु हिय हरु ।

दीपचंदी

सा — —	रे म म —	म — —	प — प —	<u>ध</u> — —
नीं ऽ ऽ	द ऽ न ऽ	भू ऽ ऽ	ख ऽ पि ऽ	या ऽ ऽ
×	२	०	३	×

प <u>ध</u> प <u>ध</u>	$^{\text{प}}$म म —	म प — —
स ऽ स ऽ	रि स ऽ	नि सि ऽ ऽ
२	०	३

प <u>ध</u> —	$^{\text{प}}$म — प —	$^{\text{प}}$म — —	<u>ग</u> रे सा —
वा ऽ ऽ	स ऽ र ऽ	ऽ ऽ ऽ	(अ ऽ व ऽ)
×	२	०	३

सा सा रे	रे म म —	— प म	$^{\text{ग}}$म ग रे सा
न य ऽ	न ऽ नी ऽ	ऽ र ऽ	मु ऽ ख ऽ
×	२	०	३

सा — रे	सा नी — नी	नी सा —
ना ऽ ऽ	म ऽ ऽ पु	ल क ऽ
×	२	०

रे रे — —	म <u>ग</u> —	रे सा सा —	— — —	— — — —
त नु ऽ ऽ	हि य ऽ	ह ऽ रु ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
३	×	२	०	३

पार्वती मंगल

बिनइ गुरुहिं, गुनिगनहिं, गिरिहि गन नाथहिं,
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि।
गावउँ गौरि गिरीस विवाह सुहावन,
पाप नसावन, पावन, मुनि-मन-भावन।
कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं
गिरिजा जोग जुरिहि बर अनुदिन मोचहिं।
एक समय हिमवान भवन नारद गए,
गिरिवर मैना मुदित मुनिहिं पूजत भए।
अति सनेह सति भाय पाँप परि पुनि पुनि,
कह मैना मृदुबैन सुनिय बिनती मुनि।
"तुम त्रिभुवन तिहुँ काल विचार विशारद,
पारवती अनुरूप कहिय बर नारद।
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन,
कछु न अगम सब सुगम भयो बिधि दाहिन।
"मोरेहु मन अस आव मिलिहिं बर बाउर,
लखि नारद नारदी उमहिं सुख भाउर।
तुमरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं,
कहिय उमहिं मनलाइ जाइ अवराधहिं"।
सुनि सहमे परि पायँ, कहत भए दम्पति,
गिरिजहिं लागि हमारजिवन सुख सम्पति।
कहि उपाय दम्पतिहिं मुदित मुनिवर गए,
अति नेह पितु मातु उमहिं सिखवत भए।

अति समाज गिरिराज दीन्ह सब गिरिजहिं,
बदति जननि, "जगदीस जुवति जनि सिरजहिं"
जननि जनक उपदेस महेसहिं सेवहि
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहिं।
नींद न भूख पियास सरिस निसि बासर,
नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरु।
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं।
नाम अपरना भयो परन जब परिहरे,
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे।
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ
हृदय खसेउ, धरि विप्र भेस सिव आयउ।
"देबि करौं कछु बिनय सो बिलग न मानब,
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब।
कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं,
अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहिं।
भीख माँगि भव खाँहिं चिता नित सोवहिं,
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं।
भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं,
जोगी, जटिल सरोष, भोग नहिं भावहिं।
एकहु हरहि, न बर गुन कोटिक दूषन,
नरकपाल, गजखाल, व्याल, बिष भूषन।
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन,

कहाँ अमंगल बेषु विशेषु अपावन।"
"मनिबिन फनि, जलहीन मीन तनुत्यागइ,
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ।
करन कटुक बटु बचन बिसिष सम हिय हए,
असन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए।
बोली फिरि लखि सखिहिं काँप तनु थर थर,
आलि, बिदा करु बटुहि बेगि, बड़ बर बर।,,
सुनि बचन सोधि सनेह तुलसी साँच अविचल पावनो।
भए प्रगट करुनासिंधु संकर भालचंद्र सुहावनो॥
सुन्दर गौर सरीर भूति भल सोहइ,
लोचन भाल बिसाल बदनु मनु मोहइ।
सैल कुमारि निहारि मनोहर मूरति,
सजल नयन हिय हरषु पुलक तनु पूरति।
जैसे जनम दरिद्र महामनि पावइ,
पेखत प्रकट प्रभाउ प्रतीत न आवइ।
देखि रूप अनुराग महेस भए बस,
कहत बचन जनु सानि सनेह सुधारस।
हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ,
पार्वती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हेउ।
अब जो कहहु सो करउँ बिलम्ब न यहि घरि,
सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पाँयन परि।
सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि,
कीन्ह संभु सनमान जनम फल पाइन्हि।

सुनि मुनि विनय महेश महासुख पाएउ,
कथा प्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनाएउ।
"जाहु हिमाँचल गेह प्रसंग चलाएहु,
जौ मन मान तुम्हार तौ लगन लिखाएउ।

गिरि गेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी।
घरबार घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी।
सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइकै,
ऋषि साथ प्रातहिं चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइकै।

गिरि, बन, सरित सिंधु सर सुनइ जो पायउ,
सब कहँ गिरिवर नायक नेवति पठायउ।
धरि धरि सुन्दर बेष चले हरषित हिए,
कँचन चीर उपहार हार मनिगन लिए।
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन,
हरषित लगीं सुवासिनि मंगल गावन।
तोरन, कलस, चँवर धुज बिबिधि बनाइन्हि,
हार पटारन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि।
बेगि बोलाइ बिरंचि बँचाइ लगन तब,
कहेन्हि बियाहन चलहु बोलाइ अमर सब।
रचहिं बिमान बनाय सगुन पावहिं भले,
निज निज साजु समाजु सजि सुरगन चले।
मुदित सकल सिवदूत भूतगन जानहिं,
सूकर, महिष स्वान खर बाहन साजहिं।
नाचहि नाना रंग तरंग बढ़ावहिं,

अज उलूक, वृक नाक गीत गन गावहिं।
पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु अखंडलु,
पूरब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधु मंडलु।
प्रमुदित गे अगवानि बिलोकि बरातहिं,
भभरे बनइ न रहत, न बनइ परातहिं।
चले भागि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत,
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत।
प्रेत बैताल बराती भूत भयानक,
बरद चढ़ा बर बाउर सबइ सुबानक।
कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिय,
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय।
समाचार सुनि सोच भएउ मन मैनहिं,
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं।
सुनि मैना भइ सुमन सखी देखन चली,
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली।
श्रीपति, सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि,
हँसहिं कमल कर जोरि, मोरि मुख पुनि पुनि।
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर,
भए सुन्दर सतकोटि मनोज मनोहर।
नील निचोल छाल भई फनि मनि भूषन,
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन।
गन भए मंगल बेष मदन मनमोहन,
सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन।

संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन,
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन।
गिरिवर पठए बोलि लगन बेरा भइ,
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लइ।

(२)

शिव का व्याह

ए माइ हम नाहीं आजु, रहब यहि अँगना, जो बूढ़ होइहैं दमाद।
इक मोरे बैरी हैं बीध बिधाता, दुसरे धिया कै भार।
तिसरे बइरि मोरे नारद बाह्मन जिन ऐसो लाएँ दमाद। ए माई०
गौरी लै ऊबब, गौरी लै डूबब, गौरी लै पइठब पतार।
ऐसन बौरहा बरसे गौरी नाहिं ब्याहब, मोरि गौरी रहिहैं कुँआर।
ए माई०
लोटा धोती पोथी पत्रा, सब कुछ लेबै छिनवाय।
जो कुछ बोलिहैं नारद ब्राह्मन, दाढ़ी धै घिसियाय। ए माई०
बसहा बरद कै नाक नँथवाइब, डमरू देबै फोरवाय,
रुद्र की माला, समुद्र बहाउब नगर से देबै निकार। ए माई०
कलसा के आरी पासी, गौरी बिनती करै, माता जो से अरज हमार,
करमलिखा सो मिला ऐ माता उठिके करहु कन्यादान। ए माई०
डाल सजावहिं री अरती सजावहि, बारि लीन्हेंनि चउमुख दीप।
या लै मनाइनि, चउक लै बैठीं करै लागीं बिध ब्योहार। ए माई०

बइरि = बैरी। आरी पासी = पास
बसहा बरद = साँड़, शिव का नान्दी

(३)

गौरी बियाहन आए भोला अब गौरी बियाहन,
आजन बाजन एकौ न देखौं डमरू बजाइ चले आएँ। भोला अब
नालकी पालकी एकौ न देखौं बसहा बरद चढ़ि आएँ भोला०
गहना गुरिया एकौ न देखौं रुद्र माल पहिनि आएँ। भोला०
जामा जोड़ा एकौ न देखौं मृगछाला पहिनि आएँ। भोला०
मौरा औ कलँगी एकौ न देखौं जटा जूट धरि आएँ। भोला०

(४)

जानकी मंगल

हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं,
सिय - रघुबीर - बिबाहु यथामति गावौं।
नृपलखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन,
करि मत रचेउ स्वयंबर सिवधनु धरि पन।
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं,
सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं।
रूप सील बय बंस बिरुद दल बल भले,
मनहुँ पुरंदर-निकर उतरि अवनी चले।
दानव देव निसाचर किन्नर अहिगन,
सुनि धरि धरि नृपबेष चले प्रमुदित मन।

एक चलहिं, एक बीच, एक पुर पैठहिं,
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं।
जनकहिं एक सिहाहिं देखि सनमानत,
बाहर भीतर भीर न बनै बखानत।
गान निसान कोलाहल कौतुक जहँ तहँ,
सोय बियाह-उछाह जाइ कहि का पहँ?
लै गयउ रामहि गाधि सुवन बिलोकि पुर हरषे हिए,
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर लिए।
देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ,
बँधेउ सनेह विदेह बिराग बिरागेउ।
"केहि सुकृती के कुँवर कहिय मुनिनायक,
गौर स्याम छबिधाम धरे धनु सायक"?।
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि महिपालक,
"ए परमारथ रूप ब्रह्ममय बालक।
पूषन-बंस-विभूषन दसरथ नन्दन,
नाम राम अरु लषन सुरारिनिकंदन।
रूप सील बय बंस राम परिपूरन",
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन।
भे निरास सब भूप बिलोकत रामहिं,
पन परिहरि सिय देब जनक बर श्यामहिं।
कहहि एक भलि बात, ब्याहु भल होइहि,
बर दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि।

सुचि सुजान नृप कहहिं हमहिं अस सूझइ,
तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ।
अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि,
गवनहि राज-समाज नाक असि फूटिहि।
पुरनर नारि निहारहिं रघुकुल दीपहि,
दोसु नेह बस देहिं बिदेह महीपहि।
एक कहहिं भलभूप देहु जनि दूषन,
नृप न सोह बिनु बचन नाक बिनु भूषन।
हमरे जान दिनेस बहुत भल कीन्हेउ,
पन मिस लोचन लाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ।
प्रथम सुनत जो राउ रामगुन रूपहिं,
बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहि।
अब करि पैज पंच महँ जो पन त्यागै,
बिधि गति जानि न जाय अजसु जग जागै।
अजहुँ अवसि रघुनन्दन चाप चढ़ाउब,
ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब।
कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन राम बिसूरति,
"कहाँ कठिन सिव धनुष कहाँ मृदु मूरति।
जो बिधि लोचन-अतिथि करत नहि रामहिं,
तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहिं।
अब असमंजस भएउ न कछु कहि आवै",
रानिहि जानि ससोच सखी समुझावै॥

"देवि सोच परिहरिय, हरष हिय आनिय,
चाप चढ़ाउब राम बचन फुर मानिय"।

× × ×

राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक,
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक।
प्रेम प्रमोद परसपर प्रगटत गोपहिं,
जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं।
तब बिदेह पन बंदिन्ह प्रगट सुनाएउ,
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पाएउ।
नहिं सगुन पाएउ रहे मिसुकरि एक धनु देखन गए,
टकटोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए।
इक करहिं दाप, न चाप सज्जन बचन जिमि टारे टरै,
नप नहुष ज्यों सबके बिलोकत बुद्धि बल बरबस हरै।
देखि सपुर परिवार जनकहिय हारेउ,
नृप समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ।
कौसिक जनकहिं कहेउ देहु अनुसासन,
देखि भानु-कुल-भानु इसानु सरासन।
मुनिबर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं,
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं।
पारवती-मन सरिस अचल धनुचालक,
हहिं पुरारि तेउ एक नारि ब्रत पालक।
सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहिं,

भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहिं।
राम रोम छबि निन्दति सोम मनोजनि,
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सोजनि।
मुनि हँसि कहेउ "जनक यह मूरत सो हइ,
सुमिरत सकृत मोहमल सकल बिछोहइ।
सब मल बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू,
धनुसिंधु नृप-बल-जल बढ़्यो रघुबरहिं कुंभज लेखहू।
सुनि सकुचि सोचहिं जनक गुरु पद बंदि रघुनन्दन चले,
नहिं हरष हृदय विषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले।
बरिसन लगे सुमन सुर दुदुंभि बाजहिं,
मुदित जनकपुर परिजन नृपगन लाजहिं।
महि महिधरन लखन कहैं बलहिं बढ़ावन,
राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन।
गए सुभाय राम जब चाप समीपहिं,
सोच सहित परिवार विदेह महीपहि।
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ,
गौरि गनेस गिरीसहिं सुमिरि सँकोचहि।
होति बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहिं,
फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहिं।
अंतरजामी राम मरमु सब जानेउ,
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ।
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ,

जनु मृग-राज किसोर महागज गंजेउ।
नभपुर मंगल गान निसान गहागहे,
देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे।
तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गावत,
चलीं लेवाइ जानकिहिं भा मनभावत।
कर कमलन जयमाल जानकी सोहइ,
बरनि सकै छबि अतुलित अस कवि को हइ।
उपवीत, ब्याह, उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं,
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं।

(५)

[इसके गाने की विधि आगे निमंत्रण में आने वाले 'अरे अरे काला भँवरवा' की भांति है। यह भी ब्याह की ही एक धुन है। अन्य मंगलों में कुछ तो इसी प्रकार हैं कुछ के गाने की विधि कठिन नहीं है।]

पहिलै मँगन सीता माँगैली से हो विधि पुरवहु हो,
सीता माँगैली जनकपुर नैहर अवधपुर सासुर हो।
दूसर मँगन सीता माँगैली से हो विधि पुरवहु हो,
सीता माँगैली कौसिल्या ऐसन सासु ससुर राजा दशरथ हो।
तीसर मँगन सीता माँगैली से हो विधि पुरवहु हो,
सीता माँगैली पुरुष रामचन्द्र देवर बबुआ लछिमन हो।

(६)

रामहिं राम रघुनन्दन श्री भगवाने,
दशरथ के कुल नन्दन मैं सरन तोहार।
कपिलिहिं गाइ के गोबर अँगना लिपाई,
गज मोती चौक पुराई धनुष [1]ओटकाई।
कुँअरि कुँअरि वृज नारि तौ मंगल गावहिं,
बाँह पकरि श्रीराम चौंक बैठावहिं।
राजा जनक जी के परन कठिन प्रन ठाना है,
गहवर धनुष गढ़ाई [2]अलप रघुनन्दन।
सीता झरोखहिं ठाढ़ी तौ विधि के मनावहिं,
गढुअर धनुष गढ़ाई अलप रघुनन्दन।
बायें हाथे धनुप उठाइनि पंच [3]उनाइनि,
धनुष भई नवखन्ड कि जय जय बोलैं हो!

(७)

मोरे मन बसि गये चतुरगुन हृदय नरायन,
सखियाँ सब बिसरैं तो बिसरैं मोरे राम नाहीं बिसरैं।
सब सखियाँ मिलि पूछेलीं अपनी सीतल देइ से,
सीता कैसन तोहार राम बाटेन तोहैं नाहीं बिसरैं।
रेखिया भिनत अति सुन्दर चलत धरती दलकै.
बिजली चमाकै।

नोट—ओटकाई = ढनगा देना, लुढ़का देना।
अलप = अल्प। उनाइनि = लचाना।

सखियाँ हँसहि त दैव गराजै राम नाहि बिसरइँ हो।
सब सखियाँ मिलि कहै लागीं अपनी सीतल देइ से,
मोरी सीता चलतिउ नगर अयोध्या हम राम देखि आइत।
छोट मोट पेड़वा छिउलिया के मोतियन गहदल,
तेहि तर राम आसन डालें ओढ़ेंलें पीताम्बर।
सब सखियाँ मिलि गइलिनि चरन धोई पियलिन,
सीता कौन तपस्या तु कइलिउ रामवर पउलिव।
भूखल रहलिउँ एकादसिया दुवादसिया क पारन,
विधि से रहिउँ अइतवार रामवर पायों।
तीनि नहायों कतिकवा तेरह बैसखवा,
माघै मास नहायों अगिनि नहिं तापेउँ।
करेउँ तिलौवा का दान राम वर पायौं।

———

वर की खोज

स्त्री मात्र के लिये यह पुरुष आदि काल से रहस्य मय रहा है जिस प्रकार पुरुष के लिए स्त्री रहस्य का विषय बनी हुई है। माता पिता के वर ढूँढ़ने के कितने पहले से कन्या के हृदय में यह खोज प्रारम्भ हो जाती है यह तो कोई मनोवैज्ञानिक ही बता सकेगा। कन्या के भी कितना पहले माता पिता के हृदय में यह भावना घर कर लेती है, इसे विवाह का इतिहास तथा उसकी दहेज प्रथा का इतिहास ही ठीक समझा सकेगा। नीचे की चार लाइनों से यह बात व्यक्त हो जाती है।

बाबा नहाइनि सुरुज पइयाँ लागिनि धिय का जनम मोरे होय,
धिय का जनमवा बहुत नीक लागै जो घर सम्पत्ति होय।
माया नहाइनि सुरुज पइयाँ लागिन धिय का जनम जिन होय,
धिय के जनमवा से झाँझर कोखिया तौ दिन दिन होय निगूड़।
पुतवा जनम लै कै निरबल कोखिया तौ दिन दिन होय सगोड़॥

इस गीत में जो कुछ है वह हमारे सामाजिक इतिहास में पुत्र पुत्री के भेद का जीता जागता चित्र है। जो कुछ भी हो सत्य तो यही है कि माता पिता को अपनी सन्तान का प्यार बराबर ही लगता है सामाजिक रीतियों के कारण कुछ भी उलट फेर हो जाय दूसरी बात है। बाबा जब बालक को गोद में खिलाते हैं उसी समय से ऐसी लोरियाँ गाते हैं—

चार बहू आवें लालन की दो गोरी दो काली,
दो भुलावैं दो खिलावें लै सोने की थारी। इत्यादि

और बेटी को खिलाते समय कहते हैं—

चाँद के ऐसा बनरा आवै,
तुझको साथ लिवा लै जावै। इत्यादि—

एक ही कोख से दोनो उत्पन्न हुए हैं पर विधि के विधान को क्या कहिए! एक को यह घर दुवार सब सौंप दिया जायगा, वह बाहर से चार बहुओ को ला सकता है। दूसरी कन्या है जिसका घर छुटेगा, परिवार छुटेगा, और जीवन भर दूसरे आदमियो को अपना बनाकर रखने की जैसी तपस्या करनी पड़ेगी। उस पर भी चार की बात ही क्या सती साध्वी बन कर एक किसी पति के साथ आजीवन खटना पड़ेगा। बाबा की इन लोरियों का असर अवश्य ही बिना पड़े नही रहता होगा।

पर सृष्टि का नियम भी खूब है कि लड़कपन से ही लड़की में शृंगार की भावना का जन्म हो जाता है जैसे कोई उसके भीतर यह बताता रहता है कि वह पुरुष के लिए सब प्रकार से गुण स्वभाव और त्याग तथा सुन्दरता से अपने को आकृष्ट करने के लायक बनावै। जैसे उस आकर्षण के आगे माता पिता का प्यार, घर, दुवार सब नगण्य है। माता पिता के हृदय में लाख प्यार दुलार होते हुए भी सयानी लड़की भार स्वरूप हो उठती है। यदि पाठक सहृदय होकर इन गीतों को गाते हुए सुनेंगे तो उन्हें कन्या की तथा कन्या के माता पिता की कोमल और स्वाभाविक भावनाओं का रसामृत पीने को मिलेगा। साथ

ही वे देखेंगे कि हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक विधानों ने इन्हें कैसा उलझा दिया है और उलझा कर ऊपर उठा दिया है। जैसे स्त्री को सीता और पार्वती का आदर्श देकर सती साध्वी ही बना डाला है। कहीं कहीं हमारी सामाजिक दुर्बलता कँपा देने वाली भी है। जैसे दहेज की कुप्रथा ने हमारे सांस्कृतिक उत्थान में एक कलंक लगा दिया है।

इन गीतों को तन्मयता से गाने पर माता पिता तथा कन्या की भावनाओं का एक मनोवैज्ञानिक इतिहास बन जाता है। जिस इतिहास के बनाने में प्रकृति और मानव की स्वाभाविक वृत्तियाँ तो आत्मा स्वरूप हैं ही पर वेदों के स्रष्टा ऋषियों और पुराण रचयिताओं और व्यासों प्रभृति दिग्गज रचयिताओं से तुलसी जैसे साधकों तक सभी का हाथ है। ये गीत हमारी संस्कृति के और हमारी कोमल भावनाओं के जीते जागते चित्र हैं। हम भला उनकी कला की और संगीत की प्रशंसा क्या करें। हाँ यही कह सकते हैं कि वे हमारी सच्ची अनुभूति हैं और उनमें हमारे हृदय से निकला स्वाभाविक संगीत है। कला कौशल और कारीगरी से उनकी तुलना करना उनके साथ अन्याय करना होगा। वे हमारे श्वास की तरह हमारे हैं। श्वास की प्रशंसा और अप्रशंसा क्या ?

विवाह जीवन की सबसे बड़ी घटना है। वहाँ से जीवन का नवीन युगारम्भ होता है। जिस प्रकार जीवन के चरम उत्कर्ष पर यह घटना घटित होती है उसी प्रकार हमारे साहित्य के उच्चस्तर पर पहुँच कर रस-राज करुणरस का जन्म होता है। अन्य सारे रस मानो इसके सहायक हैं। ख़ास कर लड़की के विवाह में तो करुण रस से सारा वातावरण भीग उठता है। तोता, भँवरा, हँस, मोर, पेड़-पौधे, घर-

दुआर, अड़ोसी-पड़ोसी कौन ऐसा है जो इसमें नखशिख तक भीग नहीं उठता। इस करुणा में शान्त और शृंगार का सघन मिश्रण हो जाता है। इस मिश्रण से यह एक अकेला रस नहीं कहा जा सकता। यह भूखे या प्रताड़ित की करुणा नहीं, माता पिता से कन्या का बिछोह एक नैसर्गिक नियम है, विधि का विधान है। यह एक आध्यात्मिक करुणा है, एक नैसर्गिक बिछोह है जिसमें बिछुड़ने वालों का भी स्वतः का कल्याण और शान्ति निहित है। इसमें कौनसा रस कहा जाय यह कहना कठिन है। इसी कारण इन विवाह के गीतों को करुणा का स्थान लोक गीतों में सर्व प्रधान है।

इस आध्यात्मिक करुणा के साथ ही मध्य काल से एक व्यावहारिक और सांसारिक करुणा भी हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय गतिरोध के कारण जुड़ गई है। जिसने होते होते आज एक भीषण रूप धारण कर लिया है। भारत ने मध्यकालीन आक्रमण कारियों को न पूर्ण रूपेण जीत पाया न अपने में खपा ही पाया। इससे एक भय की और रक्षा की भावना का प्रादुर्भाव हुआ जिसके फलस्वरूप जात पाँत के भेद, पर्दा की कुप्रथा, तथा दहेज इत्यादि की प्रथाओं का उदगम हुआ।

इसके कारण आज लड़की के विवाह में अनेकों कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई है। इन हृदय द्रावक कठिनाइयों, व्यवधानों और परवशताओं का स्मरण माँ, दादी और चाची को कैसे भूल सकता है स्त्रियाँ जब विवाह की तय्यारी में जुट जाती हैं तो सिलाई बिनाई तथा नाज बनाने जैसे थका देने वाले कार्यों की गति में वे उन करुण भावना

को गीतों के रूप में अजस्र रूप से बहाती रहती हैं। लाखों और करोड़ों लोक गीत रूपी समुद्र के भीतर यही भावनायें चारों ओर से आ आ कर विश्राम ले रही हैं। इन भावनाओं को कोई पुस्तक में बाँधने का प्रयत्न क्या करेगा? जिनके रचयिताओं ने अपना नाम भी व्यक्त करने की परवाह नहीं की उनकी कृतियों की क्या व्याकरण छन्द और भाषा की शुद्धता के कटघरे में बाँध कर रखना युक्ति संगत और कला संगत होगा? उनकी उस पावनता को मैं ज़रा भी छूना नहीं चाहती और न साहित्य की किसी प्रतियोगिता में इन्हें रखना चाहती हूँ।

हम यदि चाहें तो इन भावनाओं का मोटे तौर पर श्रेणी विभाग कर सकते हैं। यहाँ पर हम उन प्रारम्भिक भावनाओं को लेते हैं जो वर की खोज में कन्या के माता पिता का हृदय भारी किये रहती हैं।

इन भावनाओं में ठीक ठीक प्रवेश करने के लिए एक सच्चाई पाठक को भी बरतनी चाहिए वह है उस समय की सामाजिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से अवगत होना और उसी प्रकार उनमें एक होकर रस लेना। बिना इसके पाठक उन भावनाओं का पूर्ण रूप से रसास्वादन न कर सकेंगे।

ब्याह

(१)

[बेटी के हृदय में होश सँभालते ही एक प्रश्न खड़ा हो जाता है। 'क्या उसे दूसरे के घर जाना है?' बस भीतर ही भीतर इस घर के प्रति, घर के लोगों के प्रति, एक महान अनुराग और कभी एक

धुंधला विराग उसके हृदय में घर कर लेता है। माँ बाप के हृदय में भी एक भावना चोर की तरह आकर छिप जाती है कि आखिरी समय में बेटी हमारे पास नहीं रह सकेगी। जाने वाली वस्तु के प्रति एक प्रकार का अधिक अनुराग जागृत हो जाता है। इस अनुराग के स्वभाव में कुछ लड़के वाले अनुराग से भिन्नता होती है। इसमें एक प्रकार की तीव्रता आ जाती है। माँ बाप को लगता है अरे यह तो बड़ी जल्दी सयानी हो गई। पर विधि के स्वभाव और समाज की रीति पर किसी का वश नहीं। यहाँ अत्यन्त काव्यपूर्ण शैली में पुत्री और पिता का एक प्रश्न उत्तर सुनिए।

उन्नीसवीं सदी के देहात के बड़े काश्तकारों और ज़मींदारों के घरों के वातावरण की कल्पना के साथ इसको गाता हुआ सुनिए।]

(१)

काहे बिन सून अँगनवा ए बाबा रे,
काहे बिन सून लखराँव,
काहे बिन सून दुअरवा ए बाबा रे,
काहे बिन पोखरा तोहार।
धिया बिन सून अँगनवा ए बेटी रे,
कोइलरि बिन लखराँव,
पुत बिन सून दुअरवा ए बेटी रे,
हंस बिन पोखरा हमार।
कैसे के सोहइ अँगनवा ए बाबा रे,
कैसे सोहइ लखराँव,

कैसे के सोहइ दुअरवा ए बाबा रे,
कैसे के पोखरा तोहार।
धरम से बेटी उपजिहैं ए बेटी रे,
सेवा से आम तयार,
तप सेती पुतवा जनमिहैं ए बेटी रे,
धान से हंसा मँझधार।
का देइ बोधबेउ बेटी ए बाबा रे,
का देइ अमवा के गाछ,
का देइ पुतवा समोधबेउ ए बाबा रे,
का देइ हंसा मँझधार,।
धन देइ बिटिया समोधबै ए बेटी रे,
जल देइ समोधौं लखराँव,
भुइँ देइ पुतवा समोधबै ए बेटी रे,
अन्न देइ हंसा मँझधार।
का देखि मोहै जनवसवा ए बाबा रे,
का देखि रसना तोहार,
का देखि हियरा जुड़ैहैं ए बाबा रे,
का देखि नैना जुड़ाय।
धिया देखि मोहै जनवसवा ए बेटी रे,
अमवा से रसना हमार,
पुतवा से हियरा जुड़ैहैं ए बेटी रे,
हंसा देखि नैना जुड़ाय।

लखराँव—बाग़
पोखरा—तालाब
समोधबेउ—सनझा अोगे

(२)

[बेटी के इस प्रश्न मात्र से पिता को यह याद आ गई कि बेटी को अब दूसरे घर जाना है। वे इसी चिन्ता में एक योग्य वर की तालाश में निकल पड़े। वे चारों दिशाओं में घूमें पर उन्हें अपनी सुघर पुत्री के योग्य वर कहीं नहीं मिला। उस समय की कल्पना कीजिए जबकि न रेलें थीं न मोटरें। सतुआ बाँध कर लोग वर की खोज में निकल पड़ते थे।]

उत्तर हेर्यों मैं दक्खिन ढूँढ्यौं ढूँढ्यौं मैं दिल्ली गुजरात,
बेटी के बर नाहिं पाएँउँ मालिनि मरि गयौं भुखिया पियास।
बैठौ न बाबू जी चनन चौकिया पियौ न गेड़ुवा जूड़ पानि,
कैसन घर तोंहके चाही रे बाबू कइसन चाही दमाद।
सभवा बैठ हम समधी जो चाही जैसे तरैया में चाँद,
मचियै बैठी हम समधिन जे चाही खोलि खोलि बिरवा चबात।
सातहि पाँच हम देवर चाही ननदी जे चाही अकेल,
दमदा जो चाही सब कर नायक सभा बिच पंडित होय।

(३)

[कहते हैं कि दायज की आसुरी प्रथा के कारण पहले कुछ जातों में कन्या को मार डालने की प्रथा थी जिसके कारण लड़कियों को छिपाकर रखने का स्वभाव हो गया था बाबा चाचा की नज़र लड़कियों पर नहीं पड़ने पाती थी।]

ऊँची अटरिया पर चढ़ गईं लाड़िली अरे बाबा नजरिया परि गई हो,
ऊँची अटरिया पर चढ़ गईं लाड़िली अरे चाचा नजरिया परि गई हो।
आटन ढूँढ़ौ बाबा पाटन ढूँढ़ो ढूँढ़ौ दिल्ली गुजरात हो,
शुभ्र बदन बाबा मैं जो हूँ बेटी गोरा बदन बर चाहिए।
आटन हेर्‌यों बेटी पाटन हेर्‌यों हेर्‌यों गढ़ गुजरात हो,
तुमही जोग बर कतहूँ न पावा अब बेटी रहहु कुँवार हो।
भितरा से निकरी हैं बेटी की दादी रानी काहे बेटी बदन मलीन हो,
काहे बेटी अनमन काहे बेटी धनमन काहे है बदन मलीन हो।
की बेटी तोरा घटा है कलेउना की भौजी बोलैं बिष बोल हो,
काहे बेटी अनमन काहे बेटी धनमन काहे गुन बदन मलीन हो।
ना दादी मोरा घटा है कलेउना ना भौजी बोलैं बिख बोल हो,
हमरे जोग दादी बर ना मिलैं रे एही गुन बदन मलीन हो।
शुभ्र बरन दादी मैं हूँ जो बेटी गोरा बदन वर चाहिये,
इतना वचन सुनि बोली हैं दादी रानी 'सुनो बेटी बचन हमार रे।
बेटी दादी गोरी हैं बाबा साँवरे,
,, चाची ,, ,, चाचा ,,
,, बुआ ,, ,, फूफा ,,
,, सीता ,, ,, राम ,,
,, राधा ,, ,, कृष्ण ,,
कृष्ण कन्हैया मुख मुरली बजावैं मोहै सब संसार रे।'

[बेटी तो अभी भोली और छोटी उम्र की है। वह क्या जाने कि बाबा को उसके विवाह के सम्बन्ध में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वह कहती है बाबा देखो मैं तुम्हारी बेटी कितनी सुन्दर हूँ कहीं काला या बूढ़ा वर न ढूँढ़ना। हम अपनी पुत्रियों को गोद में खिलाते समय क्या गा गाकर कहते नहीं कि अपनी बेटी के लिए बड़ा ही सुन्दर वर ढूँढ़ेंगे क्या उस कथन की छाप बच्चों के मस्तिष्क में अमर नहीं हो जाती।

जब श्रमित और थकित बाबा निराश होकर कहते हैं 'उसरा माँ गोड़ि गोड़ि ककरी बोवायों ना जानौ तीत न मीठ' उस समय अद्रव रहने का दृढ़ निश्चय करके भी कोई द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता। उनकी वह दशा देख कर बेटी का बाल हृदय भी कुछ गम्भीर हो जाता है और बाल सुलभ गम्भीरता से जो उत्तर बन पड़ता है उसे उसी की भाषा में सुनिए।]

बाबा जे चलेन मोर बर हेरन पाट पितम्बर डारि,
छोट देखि बाबा करबै न करिहैं बड़ नाहीं नजरि समाय।
अरे अरे बाबा सुघर वर हेरेउ हम बेटी तोहरी दुलारि,
तीनि लोक माँ हम बड़ि सुन्दरि हँसी न करायउ मोरि।
उसरा माँ गोड़ि गोड़ि ककरी बोवायों ना जानौं तीत न मीठ,
देसवा निकरि बेटी तोर बर हेरौं ना जानौं करम तोहार।

पूरब हेरेउँ पछुवाँ मैं हेरेउँ हेरेउँ मैं दिल्ली गुजरात,
तुमहिं जोग बर कतहुँ न पावा अब बेटी रहहु कुँवारि।
पूरब हेरेउ पछुवाँ में हेरेउ हेरेउ दिल्ली गुजरात,
चारि परग भुइयाँ नगर अयोध्या दुइ बर अहैं कुँवार।
वै बर माँगैं बेटी घोड़ा औ हाथी मागैं मोहर पचास,
चै बर माँगैं बेटी नौलख दायज मोरे बूते देइ न जाइ।

(५)

[माँ अपने घर के पशु पक्षियों से कहती है मैंने तुम्हें पाल पोस कर इतना बड़ा कर दिया अब तो तुम बड़े हो गए अब तुम्हारे काम करने का समय आया। जाओ मेरी प्राण प्यारी बेटी के लिए एक योग्य वर ढूँढ़ लाओ। मनुष्य को तो घर के भीतर का हाल उतना नहीं मिल सकता जितना पशु पक्षी ला सकते हैं? सुग्गा इस प्रश्न पर गम्भीर हो जाता है और अपने कर्तव्य को भरसक पालन करता है। क्या यह गीत कालिदास के मेघदूत और सूर के भ्रमर गीत की याद नहीं दिलाता। पर इन गीतों में वे काव्य मय उक्तियाँ कहाँ? ये तो प्राणों के रस से सीधे भीग कर मानो बह रहे हैं।]

सावन सुगना मैं गुर घिउ पालेउँ चैत चना के दालि,
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क बर हेरइ जाव।
उड़त उड़त तू जायो रे सुगना बैठेउ डरिया ओनाय,
डरिया ओनाय बैठ्यो पखना फुलायउ चितयउ नजरिया घुमाय।

जे बर सुगना तु देखेउ सुन्दर जेकरि चाल गम्भीर,
जेहि घर सुगना तु सम्पत्ति देख्यो वोही घर रचेउ विआह।
हेरेउँ बर मैं सजुग सुलच्छन भहर भहर मुँह जोति,
साठ बरद मैं चन्नि में देखेउँ वोहि घर रचेउँ विआह।

[पृष्ठ ५३ के 'वै बर........मोरे बूते देइ न जाय' के आगे इन पंक्तियों को पढ़ने की कृपा करें।]

जेकरे न होय बाबा हाथी औ घोड़ा नहिं होय मोहर पचास,
जेकरे न होय बाबा नौ लख रुपैया ते बर हेरैं हरवाह।
हर जोति आवै कुदार गोड़ि आवै बइठै मुंह लटकाय,
उनही क तिलक चढ़ायौ मोरे बाबा वै बर दयजा न लेयँ।
आसन देखि बाबा डासन दिहेउ मुख देखि दीहेउ बीरा पान,
अपनी संपति देखि दाइज दिहेउ बर देखि दिहौ कन्या दान।

(६)

[लड़कियों के विवाह में ये कठिनाइयाँ आज से नहीं बहुत पहले से चली आ रही हैं। लोक हृदय सीता के ब्याह में जनक जी की इन्हीं कठिनाइयों को अपनी कठिनाइयों का प्रतिरूप समझ कर उनमें बड़ा ही रस लेता है। जनक जी का अपनी बेटी को जाँघ पर बैठा कर धनुष उठाने का रहस्य पूछना कितना स्वाभाविक है। पितृत्व जैसे सरल होकर बह चला और यह तरलता ही तो धनुप के तोड़ने जैसे कठिन प्रण का बोझ उठाने के लिए अकड़ कर खड़ी हो गई है। पूरी घटना का वर्णन इतने सरल ढँग से किया गया है कि आधुनिक कवि तो अवाक देखता रह जाता है।]

राजा जो आए नहाय तौ रनिया से पूँछहिं रे,
रनिया केसे कै धनुष उठाय धनुष तरे लीपेहु हो।

हम का जानी राजाजी पूँछिलेउ सीतलदेइ से हो,
सीता कैसे कै धनुष उठाइनि तेहितरे लीपिनि हो।
राजा जी बेटी बोलाइ जाँघ बैठाइनि,
बेटी कैसे कै धनुष उठाएउ धनुष तरे लीपेहु।
बाँए हाथे धनुष उठाएउँ दाहिने से लीपेउँ,
दाबा लीपि के चारिउ कोन धनुष ओटकाएउँ।
राजा चहुँदिसि चिठिया पठाएनि, सबै सुनि आए,
आये हैं ईश्वर महामुनि, राजा करोरन।
आए है कोढ़ी कलन्दर सूम सुमायल,
खबर गई है गढ़ लंक असुर सब धावहिं।
बीस भुजा दस सीस सो रावण आवहि,
कोऊ ठाढ़ कोऊ बैठ कोऊ पुर पाटन।
कोऊ न धनुष उठावै सबै मुख जोहैं,
राजा ने साधी है मौन तो रानी ने रोदन।
सचिवन दाबी है जीभ कि देस में बर नहीं,
सीता जी सखिन समेत झरोखवन झाँकैं।
सुर सब पति मेरी राखो कि देस में बर नहिं,
थार भरे शुभ अच्छत कि पूजहिं भवानी।
माया राखहु जग पति मेरी कि देस में बर नाहिं,
राम लखन दोनों भइया खड़े मुसकाहीं।
सीतहिं संकट कौन कि पूजहि भवानी,
बाबा मोरे जनक नृप प्रन इक धनुष कै ठाना है हो।
मोरे मन परा ओढ़ी सोच मैं पूजहुँ भवानी,

धनुषहिं धरि, प्रभु तोरि किये हैं नव खण्डहिं हो।
सीता लै के उठी हैं जयमाल राम पहिरावैं,

(७)

[अब बेटी उतनी छोटी नहीं रही। दिन प्रति दिन वह जानती है कि अनजाने घर में दूर देश में जाकर उसकी सुगति भी हो सकती है और कुगति भी। दूर देश से तब आने जाने में महीनों लग जाते थे। ऐसे गाढ़े समय में ही सबके प्रेम की परीक्षा होती है। दूर के और साधारण वर आसानी से मिल सकते हैं पर पास के तथा योग्य वर बहुत दायज माँगते हैं। ऐसे परीक्षा-समय में किसकी प्रेम-भावना कितनी गहरी है इसका रहस्य समझकर पाषाण हृदय भी द्रवित हो जायगा।]

बँसवा की खुँटिया में दुइ रे करइली एक रे बँसुरिया एक बाँस,
अम्मा के कोखिया में दुइ रे बलकवा एक बहिन एक भाइ।
भइया का लिखि गई बाबा फुलवरिया बहिनि लिखा परदेस,
भइया तौ बिलसइँ बाबा चौपरिया बहिनि कलपै दूर देस।
केउ कहै बेटी दस कोस बियहब केउ कहै कोस पाँच,
केउ कहै बहिनी मोरँग देसवा ना केउ आवै न जाय।
बाबा कहैं बेटो दस कोस बियहब भइया कहैं कोस पाँच,
मइया कहैं बेटी पाछ पछवरवा नित उठि आवहिं जाइँ।
भउजी कहैं बहिनी मोरँग देसवा ना कोई आवै न जाय,

खुँटिया = बाँस का डंडा। करइली = बाँस का कल्ला या एक पोर।

मोरँग मोरँग मति करौ भउजी ओहि देस नाउँ कुनारँ,
ओहि रे मोरँग से चिठिया लिखि भेजब मरबै करेजवा माँ तीर।
सभा बिच बिहरैं बाबा कै छतिया फाटै मइया कै करेज,
अगिले के घोड़वा बीरन भइया जइहैं पीछे लागि चार कहार।

(यहाँ पर भाई और बहिन के सामाजिक अधिकार का बड़ा ही सच्चा चित्र है।)

वरण

(वर पक्ष)

जिस प्रकार कन्या पक्ष वाले प्रारम्भिक अवस्था में वर की खोज तथा अन्य प्रकार के करुण भावों से ओत प्रोत गीतों को गाते हैं, उसी प्रकार वर पक्ष वालों के यहाँ भी उल्लास तथा वर की कीर्ति सम्बन्धी गीत गाए जाते हैं। पुराणों के काल में स्वयंवर प्रथा थी तब कन्या वर को वरती थी पर एक प्रकार से अब उलटा है। विवाह में वर पक्ष से ही स्वीकृति अपेक्षणीय होती है। वरण वर की दिशा से ही होता है।

कन्या पक्ष में जिस प्रकार सीता पार्वती और रुकमिनि के विवाह की कथाएँ हैं उसी प्रकार वर पक्ष में राम, शिव और कृष्ण की पूर्ण कथाएँ हैं। जिनको हम अपने दूसरे और बड़े संग्रह में देंगे। यह संग्रह तो एक बानगी मात्र है।

हमारा तो यह पूर्ण विश्वास है कि साधारण पति में रामत्व, शिवत्व, और कृष्णत्व स्थापित करने का श्रेय इन लोक गीतों को ही है।

इन लोक गीतों के राम, कृष्ण और शिव दूसरे कोई नहीं वे नव प्रणीत वर ही हैं। रुकमिनि सीता और पार्वती के रूप में वर के घर जाने वाली नव-वधू ही है। दशरथ और नन्द के रूप में पुत्र के पिता और जनक के रूप में कन्या के पिता ही हैं।

साधारण जन में इन महान पुरुषों के आदर्शों को आरोपित करके हमारी सांस्कृतिक एकता और व्यापकता के लिए जो काम लोक साहित्य ने किया है उसे कोई भी नागरिक साहित्य कथा अपढ़ जनताके लिये कर सकता था ? हिमालय की तराई से कन्या कुमारी तक और पंजाब से पूर्वी छोरों तक एक ही संस्कृति दिखाई देती है ।

वर पक्ष की प्रारम्भिक भावनाओं में कुछ विशेष उद्‌गार मिलते हैं। विवाह के पहले वर की उच्छृंखलताओं का वर्णन जैसा "गंगा जमुन बीच दुइ घन रुखवा" में मिलता है बड़ा स्वाभाविक है। कन्या के हृदय में वही उच्छृंखलता बढ़ कर सौत का पीड़ा दायक संताप बन जाती है जैसा भाव 'जेहिबन सिकिया न डोलै" में मिलता है। इस भावना का अन्त विवाह के बाद हो जाता हो ऐसा नहीं है। स्त्री को आजन्म यह दुख भोगना पड़ता है। पति को यह अधिकार था कि थोड़ी ही बात में वह क्रुद्ध होकर स्त्री से नाराज होकर दूसरी स्त्री से सम्बन्ध जोड़ ले। जैसा भाव 'पुरइनि पतिया लिहिन गौरि देई' में हम पाते हैं। लोक गीतों में इस प्रकार हमें दो प्रकार की स्त्री का रूप मिलता है एक तो सती साध्वी और पति परायणा, दूसरी पर पुरुष को मोहने वाली, ये दोनों ही रूप कितने स्वाभाविक हैं। स्वाभाविक होते हुये भी ये हमें नागरिक साहित्य में नहीं मिलते। यह दूसरी स्त्री भी कभी कभी सच्चा प्यार करती है और दूसरी पत्नी के दर्जे तक पहुँच जाती है जैसे पार्वती जी के साथ गंगा जी। अधिकतर ऐसी स्त्रियाँ जिनके चरित्र को उच्छृंखल दिखलाया है उन्हें मालिन का प्रतीक मान कर गीतों में खूब खरी खोटी सुनाई जाती है। इस प्रकार वर-कन्या के प्रथम मिलन

की कल्पना करके ये गीत गाये जाते हैं। कुछ गीतों में मातृ हृदय के उद्गार और कभी कभी वर की कीर्ति का वर्णन तथा उसके घर वालों की कीर्ति का वर्णन भी रहता है।

इन गीतों में योग्य वर वही है जो या तो वीर और साहसी है या कीर्तिवान है या फिर उसने घोर तपस्या की है। ऐसे ही वर को कन्या वरना चाहती है। धनुष तोड़ना एक प्रकार से वर को परीक्षा का प्रतीक है।

(१)

[पशु पक्षियों और फल फूलों को निर्देश करके सहज ही गम्भीर से गम्भीर प्रश्नों के उत्तर पा लिए जाते थे। यहाँ जटा नारियल तथा चन्दन के वृक्ष से दोनों समधियों की उपमा उनके गहरे और शालीन स्वभावों के कितनी अनुकूल पड़ती है।]

मैं तोसे पूछौं ओ घुवा नरियर, कौने बिरउआ से तू जोड़ेउ सनेह,
जड़ मोरी गई है पताल, औ डार अकास गई,
ए हो चनना बिरउआ से जुड़ा है सनेह।
मैं तोसे पूछौं कवन बाबू, कौने लाल समधिया से जोड़ेउ सनेह,
ऊँचे नगर पुर पाटन दशरथ समधिया से जोड़ेउँ सनेह।
चिठिया तौ लिखहिं जनक राजा, दशरथ जी के बेटा का हो,
बेटा कैसे नयन भरि देखहुँ, बेगिहि चले आवहु रे।
कैसे बेगिहिं चले आवौं, तौ ए मोरे ससुराजी हो,

हमका चढ़ने का चाही सुन्दर घोड़, तौ जीन लगाम कसो।
चिठिया तौ लिखैं राजा दशरथ, जनक जी की बेटी क हो,
बहुआ कैसे नयन भरि देखहुँ, बेगहिं चली आवहु हो।
मैं कैसे बेगहिं चली आवउँ, तौ ए मोरे ससुरा जी हो,
हमका चाही एक सुन्दर डँड़िया, औ बत्तीस कहरवा हो।
घुमरि घुमरि सीता पूजहिं भवानी, मनैमन माता मुसकाहिं,
जनक जी के अँगने नाचैं रामचन्द्र नाचैं कन्हैया जी का नाच।

(यहाँ पर रामचन्द्र जी को लोकगीत कार ने भावावेश में कन्हैया जी का नाच नचवा डाला है। यों तो दोनों ही विष्णु का अवतार हैं फिर भी व्यवहार में दोनो के स्वभाव भिन्न हैं पर सीता के प्रेमवश, भावावेश में राम का जो मदिर वेश दिखाया है यह देखने ही बनता है।)

(२)

[इस गीत में वर की बाल सुलभ चंचलता का सुन्दर वर्णन है]

गंगा जमुन बीच दुइ घन रुखवा एक महुलिया एक आम,
जेहि तरे कृष्ण चरावैं बछेरू मुरली बजावैं अनुभाँति।
दधि लै के चली हैं अलपा कुमारी वहि मथुरा केरी खोरि,
राह चलत ग्वालिनियन रोकहिं लपकि झपकि धरैं चोर।
दधि मोरी खाइनि मटुकि धै के फारिनि गेड़ुरि दिहिन बहाय,
स्यात बरन चोलिया मोरी फारेनि मधुवन रचैं धमार।

सबहि ग्वालिनि मिलि एक मत कीन्हेंनि वहि मथुराके री खोरि,
चलहु सखिय ओरहन दै आई माता जसोदा के तीर।
मचियइ बैठी हैं माता जसोदा ग्वालिनि ओरहन देइँ,
बरजहु जसोदा रे अपना कन्हैया मधुवन रचै धमार।
दधि मोरी खाइनि मटुकि मोरी फोरेनि गेडुरि दिहिनि बहाय,
सात बरन चोलिया मोरी फारेनि मधुवन रचैं धमार।
किरिया तौ खाओ अपने भइया भतीजवा औरउ सग लगवार,
लरिका अदान है हमरा कन्हैया का जानै रचै धमार।
तोहें लेखे कान्हा बारे कुँवारे हमरे लेखे सयान,
दूध दही के हानि करैं नित राह चलन नहिं देइँ।
धावउ तैं नउवा धावउ तैं बरिया धाई अजोध्यइ जाउ,
ओहि रे अजोध्या में सोने सुटकुनियाँ धाइ बेगिहि लै आउ।
ओहि सुटकुनियाँ से कान्हा का सुटकौं मधुबन रचैं धमार,
ठाढ़े कृष्ण मनैमन विहँसैं माता जसोदा की माछ।
नन्द की लाख दुहाइ।
जो मैं ग्वालिनि नजर भरि चितवौं ठाढ़ै सँवर होइ जाउँ,
ठाढ़े कृष्ण सँवर होइ गये हैं अखियाँ भई हैं रतनार,
मन मन विहँसइँ माता जसोदा मोरे कान्हा किरिया न झूठ।

(३)

[चाहे पुत्री की माँ हो चाहे पुत्र की, माँ का हृदय एक ही है। कौशिल्या राम की प्रीति से विभोर एक दिन अपने को संभार नहीं पाती हैं और सबके सामने सभा में ही दशरथ से राम के विवाह के

लए विनय करती है। उन्हें प्रीति के आवेश में यह भी याद नहीं कि अभी अगहन मास है और इस महीने में गौना होता है बियाह नहीं।]

सभवै बैठे हैं तीन लोक समियाँ सुनउ राजा बचन हमार,
जियत जनम राजा, भयेउ अकारथ जेहि घर राम कुँआर।
एतनी बचन जब सुनइँ राजा दसरथ उठेहैं दँवन भहराय,
हाथे माँ लीन्हेनि सुबरन छरिया लिल्लेहि घोड़े असवार।
जाइ के उतरे हैं जनक दुअरवा सुनहु न बात हमार,
साजन तोरे घर सीता कुँआरी औ मोरे घर राम कुवाँर।
बम्हना बुलाइ राजा सगुन विचारहु देहु न सीतहिं बियाहि,
अगहन दिनवां कुदिन राजा दसरथ आवइ देउ जेठ बैसाख।
बम्हना बोलाइ राजा सगुन धरउबइ सीतहिं देबै बियाह।

(४)

[प्रथम मिलन में सदा कन्या ही वर की परीक्षा लेती है। यह स्वाभाविक है लड़के स्वभाव से ही उच्छृंखल होते हैं। जिसको माता बनना है वह उच्छृंखल नहीं हो सकती। ऐसे स्थानों पर 'मालिन' एक शब्द 'सौत' का प्रतीक मान लिया जाता है]

जौने बन सिकिया न डोलै मोरे बाबा भँवरा न लेइ बसेर,
तौने बन उतरे कवन राम दुलरू तोड़ैं बेइलिया कै फूल।
विनती से बोली हैं बेटी कवन देइ सुनु स्वामी अरज हमार,
कहाँ पायउ मोरे प्रभु बेइली कै फुलवा महकै नियाई कै राति।

मोरे पिछवरवा मलिनियाँ छोकरिया मालिन बारे के मीत,
उहीं पाएउँ रानी बेइलिया कै फुलवा तौ महकै नियाई कै राति।
जौ हम होवै कवन लाला धेरिया तौ मालिनि देवै निकारि,
मालिनि की बगिया मैं असिकै उजरिहौं फुलवा विहँगि सब जायँ।
जो हम होवै कवन लाला पुतवा तौ मालिनि लेवै बसाइ,
मालिनि की बगिया मैं दुधवा सिचइहौं फुलवा लहालह होयँ।

(५)

[स्त्री की गाय से उपमा दी गई है और पुरुष उनका चरवाह है। इन शब्दों से उस समय की सामाजिक परिस्थिति के दिग्दर्शन हमें होते हैं। यों इस उपमा से पुरुष के अधिकारी स्वभाव के दर्शन होते हैं पर इसके अंतर्गत उसका संरक्षण स्वभाव तथा वीरत्व की भावना भी छिपी है। इसी प्रकार स्त्री के लिए गाय की उपमा को स्त्री के जननीत्व और शीलता का प्रतीक मानना चाहिए।]

कहँवा के गइया चरन आई औरौ मिलन आई,
कहँवा कै चरवहवा तौ गइया चरावैं हो।
कुँडिनपुर की गइया चरन आई औरौ मिलन आइ,
गोकुल कै चरवहवा तौ गइया चरावैं।
आगे आगे आवै घियँड़िया औरौ दहेड़िया,
ताहि पाछे आवै कवन दुलहा केसर गमकै।
घिउ कै घियँड़िया परिछि लेउ बेनिया डोलाइ लेउ,
दहिया कै सगुन मनाइ लेउ सब विधि शुभ होइ।

हम ना घियँड़िया परिछब बेनिया डोलाइब हो,
आप प्रभु सोएनि मलिन संग केसर गमकै।
लाख दोहाई नन्द बाबा औ माता संग बैठौं,
लाख दोहाई सग गोत मलिनिया नाहीं जानौं हो।
हमरी जो माता जसोदा सरब गुन आगर,
उनहीं तो केसर उपटहिं केसर गमकै।

(६)

[इस गीत में पुरुष की सामाजिक स्वतन्त्रता के बेजा अधिकार का सुन्दर वर्णन है। यद्यपि साथ ही यह आदर्श भी सामने आता है कि सब कुछ विपरीत होने पर भी दो सौतें कैसे प्रेम भाव से साथ रहती हैं। शिव ही नहीं भारत में आज कितने घर हैं जिनमें एक पुरुष के दो स्त्रियाँ लाख अस्वाभाविक होते हुए भी वे बड़े ही प्रेम से रहती हैं। स्त्रियों के त्याग की यह एक एक चरम सीमा है।]

पुरइनि पतिया लिहिन गौरि देइ चुनि चुनि सेज बिछाई,
तेहि पर सोवैं इस्सर महादेव खसमस मोहि न सुहाय।
खसमस खसमस जिन करौ गौरी देई खसमस नाउँ कुनाँउँ,
होत बिहान मुरगवा के बोलत खसमस देउँ छोड़ाइ।
पनिया कै गई हैं रानी गौरी देई भई पनिघटवा पै शोर,
बहि शिव शंकर बाजन बाजै महादेव का दूसर बियाह।
पनिया लै जब घर ही का लौटीं सिर कै गगरी उतार,
पियरी धोतिया पियरा जनेऊ महादेव ठाढ़े दुआर।

भीतर बाटिउ कि बहिरे गौरी देई सवतिहिं परिछि न लेहु।
किरे देवरनिया कीरे जेठनियाँ कि गनपति बहू आई,
ईतउ हैंई मोरी जनमा सवतिया मोरि पीठी डारहिं आगि।
पाछे उलटि जब चितवैं गउरि देई गंगा तौ बहिनी हमार,
तोहके रे गंगा देसहू वर नाहीं जो भइउ सउती हमार।
आरे बटोरनिउ बहिनी बारे बटोरतिउ जिभिया तो बोलतिउ सँभार,
अपने दिगम्बर बहिनी घर बैठउतिव काहे होतिउँ सवति तुम्हार।
हमतौ गौरी देई अँगना बटोरबै तपबै रसोइयाँ तुम्हार,
तुम्हरे महादेव धोतिया कचरबै रहिबै होई चेरिया तुम्हार।

(७)

[सास ने वर से बड़ा ही स्वाभाविक प्रश्न किया है। वर के उत्तर से हमें उस समय के पारिवारिक संगठन का पता चलता है। जब तक सारे सगे सम्बन्धी एकत्रित न हो जायँ लड़के का ब्याह नहीं हो सकता। आज भी हमारे परिवारों में यह संगठन किसी न किसी रूप में चला आ रहा है]

आँखि तो तोरी दुलहा अमवा की फँकिया भौंहैं चढ़ी हैं कमान,
इतनी सुरतिया जो पाएउ दुलरुआ कौने गुन रहेउ कुँवार।
बाबा मोरे गयनि कमरू के देसवा रे पितिया गयेन मेवाड़,
जेठ भइया गए हैं जीरा की लदनिया एहि गुन रहेउँ कुँवार।

दखिन के देसवा से लिखि पढ़ि आएउँ चिठिया लिखेउँ समुझाय,
'आवहु बाबा रे आवहु काका, आवहु सग जेठ भाइ।
बाबा मोरे लेइ आए मोहरा पचास पितिया लै आए हाथी घोड़,
जेठ भइया लाए हैं झारि पितम्बर अब मोरा रचा है बियाह।

(८)

[वर को भी सुघर कन्या के पाने के लिए कम तपस्या नहीं करनी पड़ती। यहाँ वर के लिए जोगी कहा गया है। भोली बेटी के मुख से उस जोगी के प्रति हास्य और फिर धरम विवाह का सुन्दर सुझाव है।]

कौन नगरिया में पाले गए जोगिया कौन नगरिया ओरी जायँ,
कौन बाबा चौपरिया रे जोगी बैठे हैं आसन मारि।
पुरुब नगरिया से आए हैं जोगी पछिम नगरिया धइ जाइँ,
कवन बाबा चौपारि धरि जोगी बैठे हैं आसन मारि।
कि तुम ओकरा के खाएउ बाबा को तुम लिहेउ उधार,
कौन लोभ केरे कारन बाबा छेंकइ तुम्हरा दुआर।
पनवा तौ ओहिकर खाएउँ बेटी फुलवा लिहेउँ उधार,
तोहरे लोभ केरे कारन बेटी छेंकहि हमरा दुआर।
पनवा तौ ओहिकर फेरहु बाबा फुलवा देहु छितराय,
एक धोतिया आपनि दै कै बाबा कै देउ धरम बियाह।

[यह एक लड़की के ब्याह में गाए जानेवाला गीत है पर इस में वर की लिप्साहीनता, वीरता और तपस्या का सुन्दर चित्र है। वह वर आज के दहेज चाहने वाले वरों से बहुत अधिक सुसंस्कृत है। वह मोती और रुपया नहीं चाहता। वह सुघर कन्या चाहता है। कन्या भी उसकी तपस्या पर मुग्ध है। पर नादान भाई यह क्या जाने वह तो आवेग में अपनी बहिन के माँगने वाले को अपना वैरी ही समझता है। पर कितना सुन्दर दृश्य है भाई के हाथ में खड्ग उठ गई है। चाचा बाबा मौन हैं, तब लाडिली बहिन जिसकी माँग में अभी सिन्दूर तो नहीं पड़ा है पर मोतियों से माँग भर कर काल्पनिक सुहाग से सोहागवती होकर आती है और भाई से उसके प्राण रक्षा की विनय करती है]

कौन की ऊँची अटरिया सुरुज मुख छाई,
किन घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए।
अजुल की ऊँची अटरिया सुरुज मुख छाई,
बबुल घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए।
कौन को पूत तपसिया अँगन मेरे तपु करै,
सजना को पूत तपसिया अँगन मेरे तपु करै।
भीतर से निकसीं अजिया थार भर मोती लिहे,
भीतर से निकसीं मैया थार भर मोती लिहे।
भीतर से निकसीं भौजिया थार भर मोती लिहे,
लेहु न पूत तपसिया अँगन मेरो छाँड़ो।

कहाकरौं थार भर मोतिया अँगन नहिं छाँड़ौं,
तुम घर कन्या कुँवारी त हमका ब्याहि देउ।
बाहर से आए बीरन भइया हाथ खड़ग लिहे,
मारौं मैं पूत तपसिया बहिनि मोरी माँगै।
भितरा से निकसीं लाड़िली मोतियन माँग भरे,
भइया जिनि मारो पूत तपसिया जनम मेरो को
खेइहै।

(१०)

[इस गाने में कामिनि के पाने के लिए वर की वीरता का वर्णन है]

नदिया के ईरे तीरे दुइ घन रुखवा एक रे महुलिया एक आम रे,
नगर अजोध्या में दुइ वर सुन्दर एक लछिमन एक राम रे।
बेरहि बेर दुलहा तोका मैं बरजौं वृन्दाबन जनि जाहु रे,
ओहिरे वृन्दावन बाघ बघिनिया जौने देस कामिनि तोहार रे।
देहु न मोरी मइया ढार तरवरिया ओहि वृन्दावन जाहुँ रे,
बघवा का मारौं बघिनियाँ का मारौं धनि लावौं डँड़ियायरे।

निमंत्रण

यहाँ पर जो गीत दिए जा रहे हैं इन्हें हम निमंत्रण कह सकते हैं। इनमें प्रत्येक सगे सम्बन्धी के प्रति हमारी गहरी भावनाओं के दिग्दर्शन होते हैं।

किसी स्त्री के घर कुछ काम हो तो उसे अपने भाई की याद आए बिना नहीं रहती। स्त्री को अपना भाई ऐसे ही किन्हीं शुभ अवसरों पर देखने को मिलता है। उसके पीछे चौक लाने की एक ऐसी रीति का निर्माण कर दिया गया है जिसमें स्त्री के लिए पियरी आती है और वह सबसे शुभ मानी जाती है। यहाँ तक कि उसी को पहन कर सारी रीतियाँ स्त्रियाँ एक बड़े ही गर्व के साथ पूरी करती हैं। उसी प्रकार ननद का भी बड़ा मान है। वह भी प्रतिदिन आने जाने वाले सम्बन्धियों में नहीं है। वह भी काज परोजन पर ही आती है। अपने भाई के यहाँ आए बिना वह भी कैसे रह सकती है। ननद के लिए भी कलस गोंठना तथा ऐसी ही अनेकों अन्य रीतियाँ निर्मित कर दी गई हैं।

इसी प्रकार जेठ जिठानी, देवर दिवरानी व लड़कियों के द्वारा सम्पन्न की जाने वाली रीतियाँ भी हैं। बधू के भाई को लावा परछने की रीति तथा अन्य छोटी मोटी रीतियाँ सम्पन्न करनी होती हैं। भीतर से हमारे हृदय में जिनके प्रति श्रद्धा है प्यार है और जिनका शामिल होना हमारे प्रत्येक दुख सुख में हमें साहस प्रदान करता है

उनके लिए यह रीति-जाल का वाह्य ताना बाना फैलाकर हमारी संस्कृति ने भीतर बाहर का एक सुन्दर समन्वय तैयार किया है। वैसे तो सामाजिकता यहाँ उस हद तक पहुँच गई है कि जहाँ जीवित सम्बन्धियों की तो बात क्या उनसे भी पहले मृत सम्बन्धी न्योते जाते हैं। सम्बन्धी क्या आँधी, पानी और इसी प्रकार की आसुरी और देवी शक्तियों तक का निमंत्रण यह हिन्दू-समाज नहीं भूलता। फिर भी इनमें स्त्री के भाई के प्रति अछूती भावनाएँ हैं। एक कोख से पैदा होकर दोनो दूर दूर हो जाते हैं फिर मिलने की बहुत ही कम सम्भावना रह जाती है। केवल इन्हीं संस्कारों में भेंट होने की आशा जाग्रत होती है। स्त्री के माइके में कौन कौन है। वह धनी है कि गरीब ! इसी दिन उसे इसपर गर्व होता है। यदि मायके से कोई न आया और वहाँ कोई न हुआ तो ऐसा दुख उसे और किसी बात में नहीं होता। इसके बाद बहिन का भी अपने भाई के यहाँ आना उतना ही आवश्यक है। ननद वाले इन गीतों की भावनाओं में भौजी जिसमें भाई के जैसी ममता नहीं होती इस कारण कुछ हलकी और हास्य की भावनाओं का प्रवेश होगया है। सर्व प्रथम हम मृत पुरखों तथा देवी देवताओं के निमंत्रण वाला गीत देंगे। तत्पश्चात अन्य आवश्यक गाने देंगे।

(१)

हे पाँच पान नौ नरियल,
सरगे जे बाटें आजा परपाजा।
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता,
भुइयाँ भवानी पाटन कै देवी,

बिजलेश्वरी माता काली माई,
डिवहार बाबा तुमरो नेवता।
विंध्याचल कै देवी तुमरौ नेवता,
घर कै देवी शायर भवानी तुमरौ नेवता,
साँप गोजर बीछी कूछी तुमरौ नेवता।
आँधी पानी लड़ाई झगड़ा,
डीमी धींगा तुमरौ नेवता।
ओंठ बिचकावनि भौंह सिकोरनि, तुमरौ नेवता,
इसरा बिसरा कन्या कुमारी, तुमरौ नेवता।
हे ओऊ जे अम्मा लाये जे अम्मा बौरे हैं आजु,
पाँच पान नौ नरियल।

(२)

[जब भाई के न पहुँचने से बहिन को इतनी वेदना हो तो कोई गरीब भी भाई भला बिना जाए कैसे रह सकता है। चाहे उसे अपनी प्यारी चिर संगिन तलवार ही क्यों न बेचनी पड़े। चाहे भाभी को अपने सोहाग का चिन्ह नाक की बेसर ही क्यों न बेचनी पड़ जाय पर वह चुनरी और पियरी लेकर ज़रूर जायगी। जब सास और ननद अपने अपने भाइयों से भेंट रही होंगी उसकी बहिन का कलेजा फट न जायगा? वह दौड़कर पहुँचेगा। ऐसे अवसर पर वह चूक नहीं सकता चाहे वह परदेस में हो चाहे आने में असमर्थ ही भले हो। कैसी अनूठी चित्त गति का वर्णन इस गीत में है?]

अरे अरे काला भवँरवा अँगन मोरे आवों,
भँवरा आजु मोरे काज बियाह नेवत दै आवों।
नेवत्यों मैं अरगन परगन औ ननिआउर,
एक नहि नेवत्यों बिरन भैया जिनसे मैं रूठिउँ।
सासु भेंटैं आपन भइया ननद आपन बीरन,
भँवरा छतिया उठीं घहराय मैं केहि उठि भेंटौं।
अरे अरे काला भँवरवा अँगन मोरे आवों,
भँवरा फिरि से नेवत दै आवों बीरन मोरे आवैं।
अरे अरे जागिनि भाटिनि जनि कोई गावौ,
आजु मोरा जियरा बिरोग बीरन नहिं आये।
अरे अरे चेरिया लौंड़िया दुवारा झाँकि आवौ,
केहकर घोड़ा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भई।
अरे अरे रानी कौसिल्या बीरन तुमरे आये,
उनहीं के घोड़ा ठहनाय दुवारे अति भीर भई।
लिल्ले घोड़े भैया असवार तो डँड़िया भावुज मोरी।
अरे अरे जागिनि भाँटिनि सभै कोई गावों,
मोरे जिअरा भये हैं हुलास बिरन मोरे आये।
अरे अरे सासु गोसाईं करहिया चढ़ावौ,
आजु मोरा जियरा हिलोरै बीरन मोरे आये।
अस जिन जानौ बहिनी त भैया दुखित अहैं,
बहिनी बेंचबौं मैं फाँड़े कै कटरिया चौक लइ अइबेउँ।
अस जिन जानौ ननदी कि भौजी दुखित अहैं।

ननदी बेचबौ मैं नाके कै बेसरिया पिअरिया लइ के
अइऔं।

कहवाँ उतारौं चौरा चँगेरवा पियरी गहागह,
कहवाँ भेंटौं बीरन भैया तौ कहवाँ भाउजि मोरी।
ओबरी उतारौं चौरा चँगेरवा पियरी गहागह,
डेवढ़ी भेंटौं बीरन भैया तौ अँगना भाउज रानी।
लहँगा लै आये बीरन भइया पिअरी कुसुम कै,
अँगिया लै आईं मोरि भौजी चौक पर कै चूँनरि।
हँसि हँसि पहिरिन ओढ़िन सुरुज मनाइन,
बढ़इ बबैया तोर बेल मान मोर राखेउ।

अरे अरे काला भँवरवा आँगन मोरे आवहु रे,
भवरा आजु मोरे काज बियाह नेवत दै आवहु रे।

सा ध़ ध़ ध़	ध़ सा —	रे म म ग	रे सा —	रे सा सा ध
अ रे अ रे	का ऽ ऽ	ला ऽ भँ ऽ	व र ऽ	वा ऽ आ ऽ
१	×	२	०	३

ध़ सा —	रे म म ग	रे सा —	रे ग रे —	रे — —
ग न ऽ	मो ऽ रे ऽ	आ ऽ ऽ	व ऽ हु ऽ	रे ऽ ऽ
×	२	०	३	×

प धप़ म ग	रे रे —	म मग रे ऽ	सा — रे
भँ व रा ऽ	आ जु ऽ	मो ऽ रे ऽ	का ऽ ऽ
२	०	३	×

रे म म ग	रे सा रे –	म ग रे ग रे	सा सा रे
ज ऽ त्रि ऽ	या ऽ ऽ	ह ऽ ने ऽ	व त ऽ
२	०	३	×

रे म म ग	रे सा –	रे ग रे –	रे – –	– – – –
द ऽ इ ऽ	आ ऽ ऽ	व ऽ हु ऽ	र ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
२	०	३	×	२

---

(३)

एक साध जिय उपजी है जो विधि पुरवहिं,
साहेब नैहर चिठिया लिखि भेजौ पियरिया हमैं आवै।
एक मास बीतै, दूसरे मास, तिसरे में ब्याह रचो,
बहिनी के अँखियन आँसु बीरन नाहीं आएं, पियरिया
नाहीं लाए।
'रनिया घर ही माँ चौक धरावहु, चौक चढ़ि बइठौ,
अब घरहीं माँ पियरी रँगावौ साध पुरावहु।'
राजा तुमरी तौ पियरी नितै कै नित उठि पहिरब,
राजा बिरना की पियरी सगुन कै पहिली चौक कै।

× × ×

बरही बरिस बीरन बहुरे मलिनि घर उतरें,
मालिन केहि घर बाजन बाजै तौ केहिकर ब्याह रचो।

राजा तुमरी बहिन घर बाजन भयनवा का ब्याह रचो,
एक मग डेहरी एक भीतर उलटि बीरन चलि भए।
'जो मैं जनतेउँ बहिनियाँ तुम्हरे घर ब्याह रचो,
बहिनी बेचतेउँ मैं ढार तरवरिया पियरिया लइके अउतेउँ।'
बीरन बेचेनि ढार तरवरिया बजाज घर पहुँचे हैं हो,
बीरन बेचेनि ढार तरवरिया रँगरेज घर पहुँचे हैं हो।
'भइया देतेउ हमका पियरिया बहिनि घर बँटतेउँ हो,
भइया देतेउ हमका पियर रँग पियरा रँगउतेउँ हो।'
जियौ न जागहु भइया कवन राम भइया,
भइया पुरएउ बहिनियाँ के साध पियरिया लै के आएउ।
भइया भउजी का सोरहौ सिंगार भतिजवा अमर होइ।

(४)

[पति की बहन अर्थात ननद का मान इस भारतीय लोक-हृदय में बहुत ऊँचा है। ननद ही नहीं ननद के सारे घर वाले मान्य समझे जाते हैं। यद्यपि ननद भावज का झगड़ा मशहूर है पर स्त्री बिना ननद का प्रेम जीते पति का हृदय भी नहीं जीत पाती]

आधे तलवा माँ हंस चूनैं आधे माँ हंसिनि,
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन रे।
आधे बगिया माँ आम बौरे आधे माँ इमिली बौरी,
तबहूँ न बगिया सोहावनि एक रे कोइलि बिन रे।
आधी फुलवरिया गुलबवा आधी माँ केवड़ा गमकइ,

तबहूँ न फुलवा सोहावन एक रे भँवर बिन।
सोने क सुपवा पछोरैं मोतिया हलोरैं,
तबहूँ न पुरुष सुहावन एक रे सुन्दरि बिन।
आधे माड़ो माँ गोत बैठें आधे माँ गोतिन बैठीं हो,
तबहूँ न माड़ो सोहावन एक रे ननद बिन रे।
बेदिया ठाढ़ पण्डितवा कलस कलस करैं हो,
बेदिया ठाढ़ कन्हैया बहिनि गोहरावैं हो।
कहाँ गइउ बहिनी हमार कलस मोर गोंठौ हो,
निचवा से डोलिया उँचवा गई पात खहराने हो।
अँगना से भैया भीतर गये भौजी से मत करैं हो,
धनिया आवति हैं बहिनि हमार गरब जिनि बोलेउ
निहुरि पैयाँ लागेउ हो।
आवो ननदी गोसाँइनि पैयाँ तोरी लागौं हो,
ननदी बैठो माँझ मड़ोवा कलस मोर गोंठौ हो।
भौजी तीनि बरन मोर नेग तोनिउ हम लेबै हो,
भौजी लेबै सोरहौ सिंगार रहँसि घर जाबै हो।
देबिउँ मैं तीनिउ नेग औ सोरहो सिगाँरउ,
हमरे हरी जी कै परम पियारि तोहार मन राखब।

(५)

[इस गीत में ननद भावज का एक सुन्दर परिहास है।]

मानिक अस मोर लेड़ुवा ननँद के मैं पठएउँ,
ननँदी गटकि गईं मोर लेड़ुवा अजहुँ नाहीं आई।

मोरी ऐसी गज-गहिली ननँदिया अजहुँ नाहीं आईं ।
भौजी भेजेउ नउवा की बरिया नेवत लइके भेजेउ हो,
कि बेदनइते बीरन भैय', गरब मोरा उलहेउ ।
नउवा तो भेजेउँ नेवत लैके बरिया सँदेस लैके,
लिल्ले घोड़े बीरन तुमरे अजहुँ नाहीं आइउ ।
आवहु ननँद गोसाईं अँगना मोरे बैठौ कलस मोरा गोंठउ,
ननँदी बैठउ न चँदन पिढ़इया कलस मोरा गोंठउ ।
भौजी हो मोरी भौजी कि तुम मोरी भौजी हो,
भौजी पाँच मोहर मोरा नेग मोहर हम लेबइ पसेरी
दुइ चाउर ।
ननँदी हो मोरी ननँदी तुमहिं मोरी ननँदी हो,
ननँदी पाँच टका तुमरा नेग परइया दुइ चाउर ।
भौजी हो मोरी भौजी तुमहिं मोरी भौजी हो,
रहिया का भूखल भनेजवा कलेउना कुछ चाही ।
ननदी हो मोरी ननदी तुमहिं मोरी ननदी हो,
ननदी बैठउ न हमरी रोसइयाँ भनेजवा खवावउ,
तुमहूँ कुछ चाखौ ।
चौका में बैठीं ननँदिया भयनवा खवाइनि आपौ खाइनि,
ननदी हौदी से बरवा निकारेनि अँचरवा चोराइनि हो ।
बरवा गिरि पड़ा बीच मड़ौना गोतिन सब देखैं,
ननदी अउतइ बरवा चोराएउ जगि मोरी भाँड़ेउ ।
तब तौ कहेउ मोरे राजा बहिनिया बोलावौ हो,
छिनरो अउतइ बरवा चोराइनि जगि मोरी भाँड़ेनि ।

'जब तौ कहेउँ मोरी रानी कि जगि जिनि रोपउ हो,
मोरे बाबा कै एकइ बिटियवा मैं कैसे न बोलावौं।

(६)

[उस समय की समाज प्रथा के अनुसार पुरुष का आदर्श सभा को सुशोभित करना था। औरतों का विशेष कार्य तरह तरह के व्यंजन बनाना था। लड़की के ब्याह में बड़ी बड़ी बरातें आती थीं पर ये स्त्रियाँ ही श्रद्धा और प्रेम से अपने हाथ का बनाया हुआ भोजन बरातियों को कराती थीं। उस समय छोटे छोटे बच्चे भी अपने साथ छूरा रखते थे। प्रत्येक समय आक्रमण कारियों का डर रहता था छोटे छोटे बच्चे भी पगड़ी बाँधते और छूरा रखते थे।]

टठियन भरले सुपरिया उपर घुवा नरियर,
ए परबत के सुगना नेवतवा लेइ जाउ।
सभवै नेवतेउ कवन बाबू रोसइयाँ कवन देइ,
छूरी पाग नेवतेउ भयनवा अँगनवा मोर सोभित।
सभवै आए कवन बाबू रोसइयाँ कवन देई,
छूरी पाग आए होरिलवा अँगनवा मोर सोभित।

(इसी प्रकार सभी मान्यों का नाम लेकर न्योता देते हैं)

(७)

[इस गीत में मुंगवाबरन कोमल दुलहा स्वयं ही बहिन बहनोई को लिवाने जाता है। पर दामाद आने में कितने नखरे कहते हैं इसका बड़ा सुन्दर चित्र है।]

भँगआवरन दुलहे कौन बाबू एड़ियन चुवत मजीठ,
एतनी सुरतिया के आगर कौन बाबू कौने गुन रहेउ कुँवार।
आये हैं बाबा चौरासी के बासी पितिया चँदेनी चौमास,
आये हैं भइया नगर कोतवलवा अब मोरा रचा है बियाह।
घोड़वा चढ़े दुलहे आये हैं कौन बाबू चले हैं बहिनिया के देश,
विनती से बोले हैं दुलहे कौन बाबू सुन बहनोइया मोरी बात।
तड़पि के बोले बहनोइया कौन बाबू सुन साले मोरी बात,
हमहिं तौ साजौ साले मतिनी हथिनियाँ हमरे गुलाम के घोड़।
हमरी पतुरिया क पलकी सजावो रे तब तोरी सजब बरात,
इतनी बचन जो सुने हैं कौन बाबू उठे हैं दँतन भहराय।
बरु बहनोइया फिरिय घर जाबै बरु हम रहबै कुँवार,
खिड़की से जब चितवें कौन बहिनी सुनु साहब बनती हमार।
जेठइ कै दुपहरिया मोरे साहब भइया मोरे भूखे जायँ,
घोड़वा कै बाग धर बहनोइया कौन बाबू सुनु सारे बिनती हमार।
जेठै कै दुपहरिया मोरे सारे तुन बहिनी लिवाये जाओ,
घोड़वा आवै कौन दुलहे डड़िया कौउनि बहिनी आइँ,
छूरी पाग आवै राम भयनवा तौ देखत सुहावन।

(८)

[यह गीत सब सम्बन्धियों को न्योतने का है।]

पिया मेरे चित मेरे बहुत उछाह,
कहौं सोइ मानिये दूर से ननद बुलाइये।

छन्द—दूर से जब ननद आई आनि लोढ़ा सिल धरै,
उजर चाउर पियर हलदी ननद शुभ ऐपन सरै।
जिया हुलसै कमल विकसै, जब से नन्दुल आइये॥

पिया मेरे, चित मेरे बहुत उछाह,
कहौ सो मानिये, दूर से धिया बुलाइये।

छन्द—दूर से जब धिया आईं, आनि बगरू लिपाइये,
मोती मानिक चौक पूरे, हेम कलस धराइये।
हिया हरसै, आनन्द बरसै जब से धीयर आइये॥

पिया मेरे चित मेरे परम उछाह,
कही मेरी मानिये! कुल कुटुम्ब बुलाइये।

छन्द दूर से जब जेठ देवर और आए गोतिया।
भाल तिलक, ललाट ऊपर, सोहे घूँघट बहुमती,
हिया हरसै, अमिय बरसै जब से आये कुटुम्बिया।

पिया मोरे, चित मेरे उमड़ो उछाह,
कही मोरी मानिये दूर से बीर बुलाइये।

छन्द—दूर से जब बीर आये, हाथ बीड़ा पान का,
बच्छ दीन्हें, गाय दीन्हीं, मढ़े सोने सींगना,
हियो हुलसे मोद खिलसै, जबसे आये बीरना॥

पिया मेरे, चित मेरे अमित उछाह.
कही मेरी मानिये, परबत से चीर मँगाइये।

छन्द—चोर जब परबत से आई, लाल लँहगा सारियाँ,
पहिरि धनियाँ चौक बैठी, इन्द्र कौतुक देखिये।
मारि गहने, उतारि अभरन पंच स्वागत कीजिये,
भाट विप्रन देहु दछिना, बिलसि लाहा लीजिये।
सोने का लाखों है दीपक पाट की चौ बातियाँ,
सुरही का घी आज जारौं बरै सारी रातियाँ।
आज पिय सँग सारि खेलौं होहु रैनि बड़ेरिया,
बरहु दीपक, बरहु दीपक हम हैं तेरी दासियाँ।

नोट—लाहा = लाभ
सारि = चौसर

---

*

सगुन

विवाह संसकार के आदि में जैसे मंगल गाए जाते हैं उसी प्रकार विवाह सम्बन्धी प्रत्येक रीति विशेष को सम्पन्न करते समय ये सगुन गाए जाते हैं। इनको गा गा कर स्त्रियाँ कन्या तथा वर के ऊपर शुभाशीशों और शुभ कामनाओं की वर्षा करती हैं जिनसे सिचकर ही वरवधू की जीवन खेती लहलहाती है।

जिस समय मंगलचार का अखण्ड पाठ शुरू होता है उस समय कथा की शंख ध्वनि पर श्रोता जैसे दौड़ते हैं उसी प्रकार प्रत्येक सुनने वाला अपने मोह को रोक नहीं पाता। कढ़ाई पर बैठी स्त्रियाँ अपनी कढ़ाई छोड़कर। कूटने पीसने वाली अपना कार्य छोड़कर और टोला पड़ोसी नौकर चाकर सभी उसे सुनकर घड़ी भर को दौड़े आते हैं और दृश्य को देख कर मानो अपने को कृतार्थ करते हैं।

उस समय सबके हृदय थोड़ी देर को पिछला वैर भाव भूलकर इस शुभ कृत्य में योग देते हैं। जैसे कन्या और वर देवतुल्य हैं और देव मंदिर में वैर कैसा ? इस घड़ी पर सबके हृदय पुलकायमान होने लगते हैं सबको कुछ मधुर स्मृति याद हो आती है सारा वातावरण जैसे भव्य होजाता है।

(१)

[आरम्भ में जो यह सगुन दिया जा रहा है। इस गाने में सारे पशु पक्षियों और टोला पड़ोसियों से शुभ बोलने की प्रार्थना की गई है।

इसके पीछे यह ध्वनि अन्तरित है कि इस शुभ घड़ी में हमें सब बैर भाव त्याग देना चाहिए।]

शुभ बोलो चिरई तुम शुभ बोलो।
शुभ बोलौ कुँआ पनिहार।
शुभ बोलौ परबत सुगना।
सगुन लै उड़ी दिशि चार।
शुभ बोलो टोला परोसिनि।
ओरौ सग लगवारि।
शुभ बोलौ माया कवनि देई।
तुमरे सगुन शुभ होई।

(इस प्रकार सबका नाम लेकर गाते हैं)

(२)

[लड़की के ब्याह में इसे गाते हैं और लड़के के ब्माह में गाने बाला सगुन आगे 'हलदी' में मिलेगा।]

आजु सिया जो के ब्याह की लगनियाँ, ए सखि घर घर मंगल,
बाजन बाज घनघोर, ए सखि घर घर मंगल।
आवति बरतिया साजे, बिबिध बहनिया ए सखि घर घर मंगल,
रघुकुल मणि सिर मौर, ए सखि घर घर मंगल।
सुनि न परत सखि बतिया आपनि, ए सखि घर घर मंगल,
जुरि जुरि मानुष आए घोर, ए सखि घर घर मंगल।

लखि बर आवै सब युवति कमनियाँ, ए सखि घर घर मंगल,
देखि दुलहे मुसकाइँ, ए सखि घर घर मंगल।
सँग राजा दसरथ सखि, धनि रे कौशिल्या ए सखि घर घर मंगल,
जेही कोखो लिए अवतार, ए सखि घर घर मंगल।

(३)

तिलक के समय का सगुन

[तत्पश्चात बर तथा कन्या का नाम लेकर गाते हैं तिलक में पीछे दिए हुए 'गनपत' वाले गाने तथा मंगल भी गाए जा सकते हैं।]

गाइ कै गोबर मँगाई, गज मोती चौक पुराई देवी सारदा,
आधे चौकी बैठे कवनलाल आधे कवन धेरिया।
गनेस मनाई।
आधे चौकी बैठे राजा राम चन्द्र आधे जनक जी के धेरिया,
गनेस मनाई।

(४)

[यह माड़व छाने का गीत है। रामचन्द्र जी ऋषि जनक के द्वार पर आसन डाले बैठे हैं। मंडप में सीता के ब्याह की प्रारम्भिक क्रियाओं का बड़ा जीता जागता वर्णन है]

थँभवा काटिय रामजी खँभवा गढ़ाएनि,
पनवा काटिय रामजी मड़वा छवाएनि,

राम जी के आसन रिखि के दुवार।
गाई के गोबर राम जी अँगना लिपाएनि,
गज मोतिया राम जी चौका पुराएनि,
राम जी के आसन रिखि के दुवार।
चौके हैं सीता राम जी आनि बैठाएनि,
गज मोतिया राम जी अँजुरी भराएनि,
राम जी के आसन रिखि के दुआर।
चौके तो बैठी आजी कतरइँ पान,
जँघिया सीता सुन्दर नयना ढुरै आँस,
राम जी के आसन रिखि के दुवार।
कि तोरा ए सीता नइहर दुर देस,
कि तोरा ए सीता सासु दुख देइ,
राम जी के आसन रिखि के दुवार।
नाहीं मोरा ए राम जी नइहर दूर देस,
नाहीं मोरा ए राम जी सासू दुख देइँ,
राम जी के आसन रिखि के दुवार।
एक तो मोरे राम जी सहिया न जायँ,
दूजे निरधन भाई बाप तजिय न जायँ,
राम जी के आसन रिखि के दुवार।

(५)

[यह सगुन माड़व छाते समय तथा वेदी बनाते समय गाते हैं वेदी के लिए कुरुक्षेत्र की मट्टी मँगाने की इच्छा प्रकट की गई है इस मंडप में सभी तीर्थों से देवता लोग नेवते गए हैं।]

कुरुखेत मटिया खोदाइब बेदिया बँधाइब हो।
ताहि बेदी चढ़ि भूप लोग बइठइँ,
रामा होय लाग मँगल भनकार जनकपुर माँड़व।
गया जी के नेउतब गजाधर नेउतब,
काशी विश्वनाथ जनकपुर माँड़व।
भारी औ खंड भैरोंनाथ जी के नेवतब,
नेवतब बीर हनुमान जनकपुर माड़व।
गया जी आएनि गजाधर आएनि,
आएनि बीर हनुमान जनकपुर माड़व।
बाबा जनक रिखि एक छल कीन्हेनि,
रामा असीय मन कै, धनुष बिरिछि ओटकाइनि।
जे बर माई धनुप ओहि तोरिहैं,
रामा उनहीं से सीता बियाहि जनकपुर माड़व।
चुटकी सबद राम जी धनुष उठाइनि हो,
रामजी धनुष भई है चकचूरि जनकपुर माड़व।
चुटकी सबद रामजी सेंदुरा उठाएनि हो,
राम शुभे शुभे सीता का बियाह जनकपुर माड़व।

(५)—क

[ये गीत तेल व हल्दी चढ़ाते समय गाए जाते हैं लड़के लड़की का नाम आवश्यकतानुसार लिया जाता है।]

के मोरे हरदी उपाजेनि कौन भइया आनेनि,
कौन बाबू के सिरहे चढ़ाइनि भौंहे जमावइ।

कोइरिनि हरदी उपाजेनि कवन भइया आनेनि,
दुलरैते बाबू के सिरहे चढ़ाइनि भौहे जनाइत।

(इसी प्रकार लड़की लड़के तथा उसके भाई का नाम यथा स्थान लेकर गाया जाता है।)

(६)

कौन बाबू कोल्हुआ गढ़ाएनि, धनियाएनि,
ए कवनि अम्मा परिछहिं तेल सोहाग कै अपटन।
अपटन लगैते बाबू घमाएनि अलसाएनि,
ए रूमाल लै भिल्ली भारैं सुहाग के अपटन।

दीपचंदी

कवनै बाबा कोल्हुआ गढ़ाएनि महराएनि।
कवन अम्मा परिछहिं तेल सुहाग कैं अपटन॥

रे रे —	रेग रेग	रे रे —	रे ग रे —	सा रे —
कव ने ऽ	बाऽ बाऽ	को ल्हू ऽ	आ ऽ ग ऽ	ढ़ा ऽ ऽ

सा — नी —	पध पध —	सा — सा ध	साध — —	रे ग रे —
ए ऽ ऽ ऽ	न ऽ ऽ	मे ऽ ह ऽ	रा ऽ ऽ	ए ऽ ऽ ऽ

रे — —
नि ऽ ऽ

प - प —	प प —	म — म ग	रे सा रे —	ग म — म म
ए ऽ क ऽ	व नि ऽ	अ ऽ मा ऽ	प रि ऽ	छ ऽ हिं ऽ

ग ग रे —	सा — सा —	रे म —	म — म ग	रे मा —
ते ऽ ऽ	ल ऽ मु ऽ	हा ऽ ऽ	ग ऽ के ऽ	अ ऽ ऽ

मा रे रे —	रे — —	— — — —
घ ऽ ट ऽ	न ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ ए ऽ क ऽ

(७)

ओहि जौरे गेहूँ कै उपटन, राई सरसों क तेल अवरौ फुलेल।
सो बाबू बैठे अपटन, दुलारु बाबू बैठे हैं अपटन।
लगावैं आजी सोहागिन, हाँथ कँगन डोलाइ,
नयना घुमाई। सो पोता उपटैं अपटन।

(८)

दुलरुआ बैठे अपटनि के,
ऐ बोलाइ लावौ आजी कवनि देई।
सुख देखैं हो, सोहिला देखैं हो,
दुलारू पोता बैठे हैं अपटनिके।

(९)

आज दुलरुआ कै हरदी मड़उआ ए सखि घर घर मंगल,
बजना बजत घनघोर ए सखि घर घर मंगल।

आजी पुराइनि मोतिया चौकवा ए सखि घर घर मंगल।
आजा जी चढ़ावैं हरदी तेल ए सखि घर घर मंगल।

(इसी प्रकार सब का नाम लेकर गाते हैं।)

(१०)

कोइरिनि कोइरिनि तू बड़ी रानी रे कहिया कै हरदी
सँचारेउ आजु रे
हमरे दुलारू बाबू अति सुकुआर रे,
ना सहैं दुलरुआ हरदी कै भार रे।

(११)

[इसी प्रकार तेलिन को भी कहकर गाते हैं।]

तेलिनि तेलिनि तू बड़ी रानी रे कहिया कै तेल
सँचारेउ आजु रे।
हमरे दुलारू बाबू अति सुकुआर रे,
ना सहैं दुलरू करुअवा कै भार रे।

(१२)

[इसी प्रकार गोड़िन को कह कर चिकस यानी उबटन कहकर गाते हैं।]

गोड़िनि गोड़िनि तू बड़ी रानी रे कहँवा कै चिकस
सँचारेउ आजु रे।

चुमावन

साठी का चाउर हालरि दूब रे चूमहिं चली हैं
कवन बाबू धेरिया रे,
मथवा चूमिहि चूमि दिहिन असीस रे,
जियहू कवन दुलरू लाख बरीस रे,
जस रे जियहिं जस धरती में धान रे,
ओस बिलसहिं जस रैनि माँ चाँद रे।

दीपचंदी

साठी के चाउर हालरि दूबि रे,
चूमहि बैठी कौन गाम धीय रे।

रे — —	ग — प —	प — —	प — प —	म प —
सा ऽ ऽ	ठि ऽ के ऽ	चा ऽ ऽ	उ ऽ र ऽ	हा ऽ ऽ
×	२	०	३	×

धनीध ध ऽ —	म ग रे	रे ग म — —	म मग —
लऽऽ रिऽऽ	दू ऽ बि	रे ऽ ऽ ऽ ऽ	चू ऽऽ ऽ
२	०	३	×

रे ग गरे —	सा रे —	रे — — ग	म मग —	रे ग गरे —
म ऽ हिऽ ऽ	बै ऽ ऽ	ठी ऽ ऽ क	व नऽ ऽ	रा ऽ मऽ ऽ
२	०	३	×	२

सा रे रे	रे — — —
धी ऽ य	रे ऽ ऽ ऽ
०	३

(१४)

सभवा बैठे हैं आजा कवन रामा बोलाइ
लावौ हो ललना धीरे धीरे,
अपने महल से आजी जो निकसीं।
बजावैं हो बिछुवा धीरे धीरे,
जीवहु हो ललना जुगे जुगे।

(सब बड़ी बूढ़ी स्त्रियों का नाम लेकर इसी प्रकार गाते हैं।)

(१५)

दुलहा सँवारने के समय का गीत

रघुनन्दन आवत बिलोकु सखी री,
नजर वाली नजर सँभार रखिये।
माथे के चन्दन घिलोकु सखी री,
नजर वाली नजर सँभार रखिए।
नयना के कजरा बिलोकु सखी री,
नजर वाली नजर सँभार रखिए।
कनवा के कुण्डल बिलोक सखी री,
नजर वाली नजर सँभार रखिए।
अंग के जामा बिलोकु सखी री,
नजर वाली नजर संभार रखिए।
मुख की शोभा बिलोकु सखी री,
नजर वाली नजर सँभार रखिए।

(१६)

[कभी कभी विनोद वश स्त्रियों को गाली भी दी जाती है। माँ, चाची, दादी, सभी का नाम लेकर सभी रस्मों पर मनमाना बना कर इसी प्रकार गा सकते हैं]

अँखिया निहारों बेटा काजरा नाही,
अम्मा तोरी कजल हटिया करे काजल देवहून जानै।
ए बाबू मैं केतना बखानौं ए बाबू, कितनी देऊँ गारी।

(१७)

बाती का सगुन

इनके अतिरिक्त कुछ और भी छोट मोट सगुन होते है जैसे बाती मिलाने का सगुन। इस समय ब्याह के बाद वर वधू कोहबर में लाये जाते हैं। वहाँ वर घृत दीप में जलाई गई दो बातियों की लौ को एक साथ मिलाता है। यह दो प्रदीप्त आत्माओं के पुनीत मिलन का प्रतीक है। यह कार्य वधू की भावज द्वारा सम्पन्न करवाया जाता है। उसे वर पक्ष से नेग भी मिलता है वर को भी कन्या पक्ष से नेग मिलता है। एक सोने की सलाई जो बत्ती मिलाने के लिए दी जाती है वह भी मिलती है।

इस समय से विवाह के समय की करुणा नीचे दब जाती है और आनन्द मिश्रित परिहास सारे घर तथा वातावरण पर छा जाता है।

सुनयना रानी पूरन भाग तुम्हार।
जाके गृह श्री राम जी दुलहा कोहबर करत बिहार। सु०

भरत, लछमण, लखन रामजी, संग सखा सिरताज। सु०
समधी दशरथ अखिल भवन पति राजत द्वार तुम्हार। सु०
कहत मुनीप 'विदेह रावरे अचल भवन भंडार'। सु०

(१८)

परिहास पूर्ण

लाल तुम काहे न टारौ बाती।
की जजनी भगिनी सिखवा है, को बाती लगै ताती।
ना जननी भगिनी सिखवा है, ना बाती लगै ताती,
जो हम बाती मिलाय देत हैं ई सब संगै जाती।
(यहाँ सब सालों सरहजों के प्रति इशारा है।)

(१९)

[कोहबर में गाते समय सालियाँ वर का रास्ता रोकती हैं और उन्हें नेग मिलता है]

दुआर की छेकाई नेग दीजै प्यारे नेग दीजै।
सोच न कीजै प्यारे सोच न कीजै,
गारी न दीजै प्यारे गारी न दीजै।
हमारे बाबा को अपनी आजी दीजै,
प्यारे अच्छा बैन सुनि लीजै प्यारे।
हमारे बाबू जी को अपनी माई दीजै,

सुहाग

यों तो सुहाग 'सिन्दूरदान' की रीति का नाम है। विवाह के अन्तरगत जितने छोटे छोटे संस्कार होते हैं उन सबों का केन्द्र रूप यही संस्कार है। इसका चिन्ह सुहागवती की माँग में सदा ही रहता है। इतना ही नहीं यह सुहाग संस्कृत होकर इससे भी बहुत आगे बढ़ गया है। जैसे भगवान से भगवान का नाम बड़ा समझा गया है वैसे ही पति से यह पति का सुहाग बड़ा है। पति भले ही बुढ़ापे से शिथिल हो जाय, रोग से निर्बल हो जाय, और मृत्यु के सम्मुख हार मान बैठे पर वह सुहाग को अमर मानती है। विधवा स्त्री का पति भले ही न रहे पर पातिव्रत उसका नहीं डिग सकता। इसी प्रकार कुमारी कन्या के हृदय में उसी भाँति पातिव्रत का आदर है। इसी से हमारे यहाँ पारवती से सर्व प्रथम सुहाग माँगने की प्रथा है। पारवती का जैसा अमर सुहाग हो सब कन्याएँ चाहती हैं भले ही उन्हें पारवती के जैसी तपस्या भी करनी पड़े। लोक गीतों में हमें करुणा मिली और खूब मिली शृंगार, हास्य, वीर, शान्त इत्यादि सभी रस मिले पर सब रसों का सुखद सामञ्जस्य जिसमें हम आनन्द की वर्षा सी होते हुए पाते हैं हमने कहीं नहीं देखा। भूलिए नहीं भजनों का आनन्द बैराग का आनन्द है। शृंगार का आनन्द भोग का आनन्द है पर सुहाग में मानों लौकिक और पारलौकिक का सुखद सामञ्जस्य हम पाते हैं। यहाँ पर योगी और भोगी दोनों ही

थोड़ी देर के लिए मानो सभी मौन हो जाते हैं। बस केवल एक रस वर्षा का अनुभव होता है। इस स्थान पर कन्या की ओर दुख का उमड़ा हुआ समुद्र और वरपक्ष से चलते हुए उन्माद युक्त हवा के झोंके दोनों आकर एक दूसरे से थपेड़े खाकर मानो स्तब्ध हो जाते हैं। दोनों के उन्मत्त कंधों पर मानों सुहाग का मदिर बोझ लाद दिया जाता है दोनों अपनी अपनी ओर लौटने लगते हैं! यह सही भी है सिन्दूर-दान तथा कन्यादान के बाद फिर करुण गान नहीं गाए जाते।

इसी सुहाग का ही अंग जोग टोने भी हैं जो सुहाग के साथ ही गाए जाते हैं। यह सुहाग भावना के बाह्य आवरण हैं। जिस प्रकार यदि हम कहें कि शक्ति की उपासना वैष्णव धर्म में संस्कृत हो कर पूत हो उठी है। उसी प्रकार ये तान्त्रिकों से आई हुई जोग टोने की वाह्य क्रियाएँ अब सुहाग को साथ मिल कर सामन्जस्य को प्राप्त कर चुकी हैं कुछ आधुनिक स्त्रियाँ अपने बदले हुए संस्कारों की उच्छृ खलता में आकर सुहाग को पति की पराधीनता मान बैठी हैं। पर मेरा विश्वास है कि स्त्री पुरुष दोनों स्वावलम्बन के साथ इसका अधिकाधिक विकास होगा ह्रास नहीं क्योंकि स्वावलम्बन जितना अधिक होगा आकर्षण को टिकने के लिये दीवार उतनी ही दृढ़ होगी। हमें भूलना न चाहिए कि यह आक्रमण नैसर्गिक है आर्थिक नहीं।

इन सुहागों के गाने की धुन विवाह की धुन से भिन्न है। बिना इस धुन से गाए वह रस वर्षा होना भी सम्भव नहीं इसी कारण कुछ गानों की स्वरलिपियाँ यहाँ देना आवश्यक हो गया है ।

[सर्व प्रथम कन्या महादेव के टोले में ही सुहाग माँगने चली है। अचल सुहागवती पार्वती भी शिव की बिना इच्छा सुहाग देने में झिझकती हैं।]

हाथ डेलरिया फुलन केरि कलियाँ,
अब कहाँ चलिउ कवन लाल धेरिया,
सोहाग माँगन साईं चलीं।
हम तो चलि भईं सदाशिव टोलवा,
देहु न गौरा रानी अपना सोहाग,
सोहाग माँगन साईं चलीं।
बोली हैं गौरा रानी रूठि रूठि बोल,
हम नाहिं देबै स्वामी अपना सोहाग,
सोहाग माँगन साईं चली।
बोले हैं सदाशिव कन्या कुँवारी का,
देहु न गौरा रानी अपना सोहाग,
जनम अहिवात,
सोहाग माँगन साईं चली।
औरे के देतिउँ मैं पात पुरिया लाई,
अपनी कवनि देई बैला लदाइ, लदिया लदाई।
सोहाग माँगन साईं चलीं।

(इसी प्रकार दादी माँ और चाची इत्यादि का नाम लेकर गाया जायगा)

[सोहाग की उपमा एक सदा फूलने वाले कल्प वृक्ष सरीखे पेड़ से दी गई हैं वह पेड़ है महादेव के आँगन में ।]

महादेव अँगने, सोहाग का बिरवा

धोबिय राय अँगने सोहाग का बिरवा, जँहवा कउन देई ठाढ़ी।
सोहागवा, सोहगवा कई आगरी, गौरा कुँअरि देई, अरे उनसे
बेटी माँगि लेव । महादेव०

"	"	"	"	**धोबिन रानी**	"	"	"	
"	"	"	"	**दादी**	"	"	"	"
"	"	"	"	**चाची**	"	"	"	"

(इसी प्रकार महादेव के स्थान पर पुरुषों का और गौरा के स्थान पर दादी इत्यादि का नाम लिया जाय)

ताल दीपचंदी (१४ मात्रा)

स्थाई

सा	सा – –	सा – सा –	सा रे –	म – ग –
म	हा ऽ ऽ	दे ऽ व ऽ	अँ ग ऽ	ने ऽ सो –
	×	२	०	३

रे सा –	रे – रे –	सा नी़ –	ध़ –
हा ऽ ऽ	ग ऽ का ऽ	बि र ऽ	वा ऽ
×	२	०	३

रे –	रे सा –	सा – सा –	रे रे –	(रे)म – ग –
धो ऽ	बि य ऽ	रा ऽ य ऽ	अँ ग ऽ	ने ऽ सो ऽ
	×	२	०	३

रे सा –	रे – सा –	सा नी़ –	ध़ – – –
हा ऽ ऽ	ग ऽ का ऽ	बि र ऽ	बा ऽ ऽ ऽ
×	२	०	३

सा सा –	सा – सा –	सा रे –	म – ग –	रे सा –
ज हँ ऽ	बा ऽ क ऽ	ब न ऽ	दे ऽ ई ऽ	ठा ऽ ऽ
×	२	०	३	१

रे – सा –	सा – –	– – – –
ऽऽ ऽऽ	ढ़ी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
२	०	३

अंतरा

प – – –	प ध –	प – म –	ग रे –	प – – –
सो ऽ ऽ ऽ	हा ऽ ऽ	ग ऽ ऽ	बा ऽ ऽ	सो ऽ ऽ ऽ
	×	२	०	३

प ध –	प – म –	ग रे –	स – रे –	– – –
हा ऽ ऽ	ग ऽ ऽ ऽ	बा ऽ ऽ	क ऽ ई ऽ	ऽ ऽ ऽ
×	२	२	३	×

स – ग –	रे – –	म – म ग	रे ग –	रे – सा –
आ ऽ ग ऽ	री ऽ ऽ	गो ऽ रा ऽ	कुं ऽ ऽ	आ ऽ रि ऽ
२	०	३	×	२

सा ऩी ध	ध – रे –	सा सा –	सा – सा –	म रे –
दे ऽ ऽ	ई ऽ ऽ ऽ	अ रे ऽ	उ ऽ न ऽ	से ऽ ऽ
०	३	×	२	०

म – ग –	रे सा –	रे – सा –	सा सा –	– – – –
बे ऽ टी	माँ ऽ ऽ	ऽ गि ऽ	ले उ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
३	×	२	०	३

(३)

[इस गीत में सुहाग की खेती का वर्णन करके गीतकार ने सुहागवती के आनन्द की सम्पन्नता का अद्वितीय चित्र खींचा है]

को मोरे रोपै सोहगवा कै बारी रे,
कोरे सिंचावै कौन देइ जूड़ पानी रे।
बाबा मोरे रोपैं सोहगवा कै बारी रे,
भइया रे सिंचावैं भौजी देईं जूड़ पानी रे।
बाढ़ा है सुहाग बाबा हालर देइ रे,
काटि काटि बाबा मोरे धरैं खरिहान रे।
काटि काटि बाबा मोरे धरैं खरिहान रे,
बरहा बैल बाबा दँवरी नधावैं रे।
बरहा बैल बाबा दँवरी नधावैं रे,
हाँकइ कवनि बेटी मन चित लाई रे।
हाँकत हाँकत बेटी गईं कुँम्हिलाई रे,
लिहिनि कवन बाबा जाँघ बैठाई रे।

झिन मोरा अँचरा सोहाग झरै लागा रे,
लेहु न कवन पूत पटुका पसारि रे।

(४)

[पलँग चार के समय यह गाना गाते हैं। कलेवा के समय वरवधू को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके पलँग पर बैठा कर बड़ी बूढ़ियाँ हाथ में जो ले कर पलँग के चारों ओर उन्हें घूम घूम कर बोती चलती हैं और इसे गाती हैं।]

जैसे उलहति आवै सोहाग बिरवा,
जैसे लहरति आवै सोहाग बिरवा।
उनके बाबा राय अँगने सोहाग बिरवा,
उनकी दादी रानी सींचैं भरि गडुवा।

[इसी प्रकार सब स्त्री तथा पुरुष सम्बन्धियों के नाम ले कर गाते हैं।]

कहरवा ताल

सा सा	सा रे सा सा	नी सा रे मा ग	रे — मा सा सा	सा प
जै से	उ ल हा त	आ ऽ वै सो ऽ	हा ऽग वि र	वा ऽ
	×	×	×	×

सा सा	स म म ग	रे ग म प	ग म म ग	ग रे सा
उन की	दा दी रा नी	सीं ऽ च हि	भ रि ग डु	वा ऽ ऽ
	×	×	×	×

[इस सुहाग में स्त्री के भीतर बाहर सोहाग की वर्षा का दृश्य है। चित्त वृत्ति चंचलताओं से हटकर एक रस वर्षा का अनुभव करती है।]

सोहाग सोहाग बखानिए ,
सोहाग की नन्हीं नन्हीं बूँदियाँ।
सोहाग अँगनवन झिरि चले, सोहाग अँचरवन भरि चले ,
सोहाग बदरिया ऊमड़ी।
सोहाग ओरउतिन चुइ चले, सोहाग पनरवन बहि चले ,
सोहाग कि लढ़ियन लदि चले, सोहाग कि मटकन भरि चले।
सोहाग सोहाग बखानिए ,

दीपचंदी (१४ मात्रा)

सुहाग उरौतिन चुइ चले।

सा म ग	रेग रे –	सा – नी ऽ	नी सा –	सा रेग रे सारे
सु ऽ ऽ	हाऽ ऽ ऽ	ग ऽ उ	रौ ऽ ऽ	ति नऽ ऽ ऽ ऽ
	×	२	३	३

रेग रे सा	सा – सा म ग
चुइ ऽ च	ले ऽ, सु ऽ
×	२

(६)

[बेटी कहती है बाबा सोहाग बड़ा ही दारुण है इसलिए कमसे कम तुम तो जान बूझकर मुझे अच्छे घर भेजो, फिर मेरा भाग्य है ।]

सोहगवा बड़ा दारुना ।

बाबा ऐसे घर ब्याहो बाबा वैसे घर ब्याहो,
जहाँ घोड़न की घुड़सारिया, जहाँ हाथिन की हथसारिया ।
जहाँ द्वारेन पर चोबदारवा, जहाँ ड्योढ़िन पहरेदारवा । बाबा०
जहाँ माली गूँधै हारवा, जहाँ पानी भरैं कहारवा ।
जहाँ गहना गढ़ै सोनारवा, जहाँ मोती पोहै पटहारवा । बाबा०

(७)

[बेटी इतनी भोली है कि उसे पता ही नहीं कब यह सुहाग उसके सम्पूर्ण मन और सारे शरीर पर अधिकार कर बैठा]

मैं ना जानू रे सोहाग होने लागा ।
गई हैं दुलारी बेटी पारवती पासा ।
पारवती का सुहाग, मेरी बारी भोली लागा,
मेरी चन्द्रबदनियाँ लागा,
मेरी राजदुलारी लागा । रे सुहाग होने लागा । मैं०
गई हैं दुलारी बेटी पारवती पासा ।
पारवती का सुहाग । अतर गुलाबी होइ के लागा,

चोवा चंदन होइ के लागा, गद कस्तूरी होइ के लागा।
रे सुहाग होने लागा। मैं०

पारवती का सुहाग, पाँव मेहावर होइ के लागा,
हाथ मेंहदिया होइ के लागा, मँगिया सेंदुर होइ के लागा
रे सोहाग। मैं०

(८)

[सुहाग की अन्तर प्रेरणा इतनी प्रबल है कि बेटी ने सब लाज छोड़ पिता के दरबार में उन्हें सोते से जगाने का निश्चय कर डाला]

हाथ सिंधोर लिए कोछवा माँ दूब धान,
चली हैं दुलरैतिन बेटी बाबा दरबार।
सोवत जगावैं बाबा उठे हैं चिहाय,
कवन सँजोगवा बेटी आइउ दरबार।
अन्न न माँगौ बाबा दरब न माँगौ,
इक मैं माँगौ बाबा आजी के सुहागवा।
देहु दुलरैतिन आजी दाहिन लट झारि,
लेहु न दुलारी बेटी अँचरा पसारि।
अँचरा के जोगवा झरिय झुरि जइहैं,
मँगिया के जोगवा अमर अहिवात।

(९)

[इस गीत में भी एक आनन्द की चित्त वृत्ति का वर्णन है]

आजु सुहाग कै राति चन्दा तुम उइहौ,
आजु नवेली कै राति चन्दा तुम उइहौ।

चन्दा तुम उइहौ सुरुज छिपि जइहौ। आजु०
बेदिया पर उइहौ मड़ए पर उगिहौ।
मौरा पर उइहौ मौरी पर उइहौ। आजु०
जामा पर उइहौ जोड़ा पर उइहौ।
दुलहा पर उइहौ दुलहिन पर उइहौ। आजु०

(इसी प्रकार जितना चाहें बना कर गा सकते है)

दीपचंदी

आज सुहाग कइ राति चंदा तुम उगि हो।
जामा पर उगिहौ अरे पटुका पर उगिहौ॥

सा धृ –	धृ सा सा –	सा रे –	रे म म ग	रे सा रे –
आ ऽ ऽ	ज ऽ मु ऽ	हा ऽ ऽ	ग ऽ क इ	रा ऽ ऽ ऽ
×	२	०	३	×

– – रे धृ	धृ धृ सा	रे म म ग	रे ग सा –	रे – रे –
ऽ ऽ ति ऽ	चं दा ऽ	तु ऽ म ऽ	उ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ गि ऽ
२	०	३	×	२

रे – –	रे सा सा धृ
हौ ऽ ऽ	अ ऽ ब ऽ

^रे^प - -	प - प नी	ध पध प	म - रे म	म ग रे
जा ऽ ऽ	मा ऽ प र	उ गिऽ ऽ	ह ऽ उ ऽ	प ट्ठु ऽ
×	२	०	३	×

रे ग रे म	ग रे सा	सा - सा -
का ऽ प र	उ गि ऽ	ह ऽ उ ऽ
२	०	३

(१०)

सातो सुहाग

[सात और पाँच संख्याओं में कुछ आध्यामत्कि रहस्य माना गया है। देवी देवताओं और बड़ी बूढ़ियों से सोहाग प्राप्त करने के बाद सातवाँ और असल सोहाग पति से मिलता है]

पहिला सुहाग कड़े पुर है देवी पास में
अब जाई पहुँचे गौरा देई की माँग में
दुसरा सोहाग विंध्याचल है देबी पास में
अब जाइ पहुँचे गौरा देई की माँग में
तीसरा सोहाग आजा घर है आजी के पास में
अब जाइ पहुँचे गौरा देई की माँग में
चौथा सोहाग बाबा घर है अम्मा जी के पास में
अब जाइ पहुँचे गौरा देई की माँग में

[इस प्रकार छै सुहाग तक घर के सगे सम्बन्धियों के नाम कह कर]

सतवाँ सोहाग ससुर घर है स्वामी जी के पास में
अब जाई पहुँचे गौरा देई की माँग में।

(११)

टोना

माई री मैं तो टोना करूँगी।
कौवा के पंख कबूतर की गरदन,
उड़ती चिरैया की आँख मगाऊँगी।
माई री मैं तो टोना करूँगी।
इन तीनों की तावीज बनाऊँ,
बन्ने के कान पहनाऊँगी,
माई री मैं तो टोना टोना करूँगी।
जन्तर के बाँधे म कान उठावै,
महिं सुनै पराई बात री।
इन तीनों की तावीज़ बनाऊँ,
बन्ने के आँख पहनाऊँगी,
माई री मैं तो टोना करूँगी।
जन्तर के बाँधे न आँख उठावै,
महिं लखे पराई नार री।
माई री मैं तो टोना करूँगी।
इन तीनों की तावीज़ बनाऊँ,

बन्ने के पाँव पहनाऊँगी,
माई री मैं तो टोना करूँगी।
जन्तर के बाँधे न पाँव उठावै,
नहि छोड़ बिदेस को जावै।
माई री मैं तो टोना पढ़ूँगी।

(१२)

टोना सिखायेसि रे मैया मोका टोना सिखायेसि रे।
अपनी ऐल में अपनी गैल में टोना सिखायेसि रे।
द्वारे आवत मोका मुर्गा बनायेसि, चउरा चुंगायेसि रे। मैया०
मड़ये आवत मोका बँदरा बनायेसि, नाच नचायेसि रे। मैया०
कोहबर आवत मोका बिल्ला ,, दहिया चटायेसि रे। मैया०
महलों आवत मोका दुलहिन ,, गरवा लगायेसि रे। मैया०

दीपचंदी

ध़ ध़ —	ध सां — सां —	सां — —	रे ग सा —	रे — —
टो न ऽ	वा ऽ सि ऽ	खां ऽ ऽ	ये ऽ सि ऽ	रे ऽ ऽ
×	२	०	३	×

— — प —	प ध —	प — म —	ग रे —	सा — रे —
ऽ ऽ मै ऽ	या ऽ ऽ	मो ऽ का ऽ	टो न ऽ	वा ऽ सि ऽ
२	०	३	×	२

ग म ग	रे ग रे —	म नि़ —	ध़ — प़ —
खा ऽ ऽ	ये ऽ सि ऽ	रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
०	×		२

अंतरा

ध़ ध़ –	सा – सा –	रे रे –	म – ग –	रे सा –
अ प ऽ	नी ऽ ऐ ऽ	ऽ ल ऽ	में ऽ ऽ ऽ	अ प ऽ
×	२	०	३	×

रे – ग रे	सा सा नी़	ध – – –	
नी ऽ गै ऽ	ऽ ल ऽ	में ऽ ऽ ऽ	टोनवा सिखायेमि रे।
२	०	३	

(१३)

अच्छे अच्छे टोना मेरी बारी बुआ जानैं,
श्याम सलोने टोना मेरी बारी बुआ जानैं।
चलो बुआ जी, चलो बुआ जी, मुल्ला के घर जइए,
मुल्ला केरे बेटे से तबीज बनवइए।
चलो बुआ जी चलो बुआ जी सोनरा के घर जइए,
सोनरा केरे बेटे से तबीज गढ़वइए।
चलो बुआ जी चलो बुआ जो पटवा के घर जइए,
पटवा केरे बेटे से तबीज गुँधवइए।
तबीज माड़ो बीच बुआ जी मुझे पहिरइए,

कहरवा ताल

अच्छे अच्छे टोना मेरी बारी बुआ जानै।
चलो बुआ जी चलो बुआ जी मुल्ला के घर जइए॥

रे रे सा नी़	नी़ नी़सा रे रे	रे रे रे रेग	रे सा सा म
अ च्छे अ च्छे	टो नाऽ मो री	बा री बु आ ऽ	जा ऽ नै ऽ

म म —म म मग	रे रे —ग म पध	ग ग म म ग
च लो ऽ बु आ जीऽ	चलो ऽ बु आ जीऽ	मु ल्ला के घ र

रे गरे सा —
जै ऽऽ थै ऽ

(१४)

कहँवा से जोग आये हैं माई,
केकरे दुआरे जोग घुरमैंगें माई,
जोग बड़ा रे सयान।

कामरू से जोग आये हैं माई,
अजिआ सासू बड़ियै जोगिनियाँ हैं माई,
टिकवा झाँकिय जोग दीन्हेंनि हैं माई,
जोग बड़ा रे सयान।

टिकवा पहिनै कवन दुलरैतिन रे माई,
टिकवा नियर दुलहा घुमरै रे माई,
जोग बड़ा रे सयान।

निकासी

वर के यहाँ बारात की निकासी की तैयारी ही विशेष रूप से सम्पूर्ण संस्कार को छाये रहती है। इसी के अंग हैं। (१) वर का तेल उपटन (२) नहान व नहछू (३) जामा जोड़ा और मौर से विभूषित होना तथा सुहागिनों के हाथ से काजल इत्यादि डलवा कर शृंगारित होना। सम्पूर्ण परजों, घर की बड़ी बूढ़ियों तथा कन्याओं और परिवार वालों का आशीर्वाद ग्रहण करके वर जाने के लिये तय्यार हो जाता है।

वर पक्ष में इस अवसर पर संगीत व शैली की दृष्टि से प्रायः दो प्रकार के गीत गाए जाते हैं। एक प्रकार के गीत तो वे हैं जो शकुन के गीत कहे जा सकते हैं और 'विवाहों' को भी हम इन्हीं के अन्तरगत ले सकते हैं। ये गीत बहुत पुराने हैं। इनकी परम्परा पुराण-काल से मानी जा सकती है और तब से बराबर धीरे धीरे जनपदीय बोलियों में उनका विकास होता गया। जिसका रूप आज तक हमें सम्पूर्ण देश में प्राप्त है।

दूसरी शाखा अपनी उस पुरानी शाखा से वैसे ही भिन्न है जैसे आधुनिक सन्तान स्वभाव तथा व्यहार में अपनी वृद्धा माता से कभी कभी एकदम भिन्न लगती है इन नए गीतों की शैली, भाषा और भाव उन पुराने गीतों से एकदम भिन्न हैं। यद्यपि इनका जन्म इन्हीं पुराने

गीतों से हुआ है फिर भी इनके ऊपर बहुत से ऐतिहासिक प्रभाव पड़े। इनमें दो प्रकार के प्रभाव उल्लेखनीय हैं। जिस प्रकार मुसलमानों के आने से देश की राजनीति में महान परिवर्तन हुए उसी प्रकार भारतीय संगीत के साथ फारस के संगीत के सम्मिश्रण से भी संगीत की दुनियाँ में बड़े ही मौलिक और महान परिवर्तन हुए। अमीर खुसरो को इसकी रखा माना जा सकता है। इन गीतों की भाषा, भाव संस्कृति और शैली सभी में एक ऐसी विभिन्नता है जिसकी हम किसी भी प्रकार से उपेक्षा कर ही नहीं सकते। यद्यपि डेढ़ हजार वर्षों में वह हमारे स्पन्दन के साथ मिलकर एक हो गई है फिर भी यह हम दुख के साथ कह ही सकते हैं कि अभी भी उन गीतों में भावना की तीव्रता नहीं आ पायी है जैसी हमें पुराने विवाह के गीतों में मिलती है। इन नए आए गीतों की नामावली तो बहुत लम्बी है पर विवाह के सम्बन्ध में हम यहाँ विवाह वाले गीतों को ही लेते हैं। वे हैं बन्नी, बन्ना, सेहरा, घोड़ी व दादरा इत्यादि। ये सभी प्रायः लड़के के विवाह में गाए जाते हैं। उन सबके नाम भी अभी तक उर्दू फारसी में ही चले आ रहे हैं। ये सभी गीत मुसलमानों के यहाँ बड़ी ही सुन्दर रीति से गाए जाते हैं। उनकी भाषा कुछ उर्दू और अधिकतर जनपदीय है। अब इनकी दिशा खड़ी बोली की ओर ही अधिक जाती हुई दिखाई पड़ती है इनके विषय में हमने भूमिका में आवश्यक संकेत किए हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि संगीत के संसार में शास्त्रीय सङ्गीत के साथ साथ लोकगीतों में भी फारस के संगीत के संयोग से महान परिवर्तन आए हैं। अपितु हम कहेंगे कि पहले लोक गीतों से ही परिवर्तन आरम्भ हुए होंगे।

यहाँ पर तो विवाह सम्बन्धी गीतों की चर्चा अपेक्षणीय है। बन्नी-बन्ने, सेहरे, घोड़ी और दादरों में एक सजावट की तथा सांसारिकता और भौतिक शृंगार की भावना तो खूब है पर अभी तक जैसे आध्यात्म ने उन्हें अपना नहीं पाया है। मुसलमानों के यहाँ उर्दू भाषा की बात मैं नहीं कहती पर जनदीय भाषाओं के इन गीतों में वह गहराई नहीं आ पाई है। भारतीय परम्परा में कोई भी विषय हो जबतक एक प्रकार की दार्शनिकता उनको नहीं छूती तब तक जैसे वह वस्तु भारतीय दृष्टिकोण से अछूत ही रहती है। अभी इनकी भी कुछ ऐसी दशा चल रही जान पड़ती है। पुराने गीतों को गाकर जैसे वह छूत ही छुड़ाई जाती है। वैसे अब पुराने गीतों को चाव से गाने की प्रथा उठती जा रही है। अतः दोनों ही प्रकार के गीत हमारे यहाँ गाये जाते हैं। आगे ये गीत विधिपूर्वक दिये जा रहे हैं।

(१)

[इस गीत में वर की उम्र वाले लड़कों के चंचल चरित्र का बड़ा ही जीता जागता और सच्चा वर्णन है। जिसे गीत ही में समझते बनता है]

मोरे पिछवरवा सुपरिया का बिरवा तौ इलग विलग गई डार,
तेहि तरे ठाढ़े रानी के दुलरुआ रे तोड़हिं सुपरिया का फूल।
सभवइ बैठे हैं राजवा बाबा उनके मालिनि उरहन देइ,
बरजौ न राजा तुम अपने दुलरुआ तोड़हिं सुपरिया कै डार।
बारे होयँ तौ बरजौं री मालिनि छैल बरज नहिं जायँ,

कलियाँ होयँ तौ रूँधौ री मालिनि फुलवा रूँधे नहिं जायँ।
क्अना होयँ तौ पाटौ री मालिन सगर पाटे नहिं जायँ,
ये तौ हैं मालिनि बारी कै भँवरा तौ कलिन कलिन रस लेयँ।

(२)

[वर के पिता के आँगन में चन्दन का वृक्ष है। कन्या के पिता के आँगन में मनझरिया यानी हर सिंगार का वृक्ष है। वर और कन्या के यश और सुन्दरता के लिए कैसी अनुपम उपमाएँ हैं। भोली उम्र वाले वर और कन्या की हठ का वर्णन उससे भी सुन्दर है।]

कौन बाबू अँगने रे चन्दन बिरवा आवै बास सुबास,
कौन बाबू अँगने फुलै मनझरिया फूलै औ झरि जाय।
अँगने माँ बिरझे हैं दुलहे कवन बाबू ई फुलवा हम लेब,
अपनी मैं रंगब पाट पटुलिया भइया जी कै कुलही कमान।
इतनी बचन जब सुनेनि कवन देई सुनु साहब बिनती हमार,
आपहु से मोर भइया दुलरुआ रँगबइ दोहरी पाग।
इतनी बचन जब सुनेनि कवन बाबू उठे हैं दमन झहराय,
ऐसन दुलहिन चौक पर छोड़बै करबै दुसर बियाह।
गोड़वा कै पाग धइके सारे कवन बाबू सुनु बहनोइया मोरी बात,
एक छोड़ बहनोइया दुइ पाग रंगौ बहिनी लिआए जाउ।

(३)

[इस गीत में कन्या की स्वाभाविक लज्जा और वर के अधिकारो और चुलबुलेपन का बड़ा सुन्दर वर्णन है।]

साँवर घोड़वा छैल असवरवा बाँधे झिलमिलिया कै पाग,
ओहि रे जनकपुर के साँकर गलियाँ छयलवा के अरझै पाग।
भितरा से निकरी हैं बेटी सितलरानी भई हैं डेहरिया धै के ठाढ़,
पगड़ी कै पेंच छुड़ावौ मोरी कामिनि मोरा तोरा जुरा है सनेह।
कैसे मैं पेंच छुड़ावौं मोरे स्वामी देखिहैं सहरवा के लोग,
सोना मोती लै के बाबा सँकलपैं तब होबै कामिनि तुम्हार।
एतना बचन सुनि बोले हैं दुलहे राम सुनु कामिनि मोरी बात,
तुमरे बबइया जी के सोने कै कटोरवा हम लेबै दइजा लगाइ।
हमरे बबइया जी के सोने का कटोरवा भइया पियैं मोरे दूध,
भइया तो हैं मोरे बाबा के दुलरुआ कैसे देहैं दइजा लगाइ।

(४)

सातों सगुन

[यहाँ पर केवल एक सगुन दे रहे हैं। मंडप में गाए जाने वाले सभी सगुन व उपटन तेल इत्यादि के गीत 'सगुन' में देखिए। 'आराधना' में गणपति की आराधना 'मनावहु रे गुरु गनपति देव' बर को संवारते समय भी गाते हैं।]

अरे अरे सुगना अरे अरे सुगना सगुनवा लइके आव,
तोहरे सगुनवा रे सुगना होइहैं बियाह।
अरे अरे बँभना अरे अरे बँभना पतरवा लइके आव,
तोहरे पतरवा रे बँभना होइहैं बियाह।

अरे अरे लोहरा अरे अरे लोहरा खँभवा लइके आव,
तोहरे खँभवा रे लोहरा ... ... बियाह।
अरे अरे कोंहरा ... पूना कलस लइके आव,
तोहरे ... ... होइहैं बियाह।
अरे अरे दरजी ... जामवा लइके आव,
तोहरे जमवा ... ... बियाह।
अरे अरे मलिया ... मौरवा लइके आव,
तोहरे मउरवा रे ... ... बियाह।
अरे अरे बरइनि ... बीड़ा लइके आव,
तोहरे बिड़वा रे ... ... बियाह।
अरे अरे अहिरिनि ... दहिया लइके आव,
तोहरे दहिया रे ... ... बियाह।

(५)

[माता के प्रेम और स्त्री की पति-भक्ति का हिन्दू आदर्श इस गीत की प्रौढ़ शैली में सजीव रूप से सामने आ जाता है। गंगा जल और गेडुए की पावनता और सेविका की मुग्ध सेवा कैसी मनोहारिणी है।]

ऊँची है राम जी कै बेदिया ऊँची औ बड़ी सुन्दर हो,
ऊँचा है राम के लिलार तिलक भल सोहै हो।
मचियै बैठी कौशिल्या रानी अँखियन आँस ढुरैं,
राम ऐसी घड़ी जइहैं बियाहन कोई नाहीं साथी।

जिनि रोओ माता कौशिल्या तौ जिनि आँस ढारौ,
राजा दशरश सजिहैं बरात तौ लछिमन साथ जइहैं।
हथियन आवैं राजा दशरथ घोड़वा शत्रुघन,
छत्र लगाए श्री राम लखन आवैं दुनमुन।
अँगना बहारै एक चेरिया औरौ लौंड़िया,
चेरिया सोने के गेड़ुवा गंगा जल राम पग धोवौ।
हथवन पैर पखारहिं सैननि बदन हेरैं,
सीता कौन तपस्या तुम कीन्हेउ राम बर पावन।
दसहिं कतिकवा नहानिउँ बीसहिं बैसखवा,
चेरिया बड़े कै चरन धोइ पीएउँ राम बर पावन।

(६)

[यह गीत बर को नहलाते समय गाते हैं। अन्य सगुन के गीत 'सगुन' में देखिये।]

किन यह पोखरा खनाया घाट बँधावा,
केकरे भरइँ कहार राम अन्हवाई हैं।
आजा यह पोखरा खनावा है पाट बँधावा है,
उनहीं के भरइँ कहार राम अन्हवावइँ।
(इसी प्रकार सभी बड़े बूढ़ों का नाम लेकर गाया जाता है।)

(७)

[यह नहछू का गीत है। बर रूपी राम का इसमें सुन्दर चित्र है जिसे पढ़ते और सुनते ही बनता है।]

रामहिं राम रघुनन्दन श्री भगवानैं।
दसरथ के कुल नन्दन मैं सरन तोहार,
हरे हरे बाँस कटाइ हरिस पुनि लाएनि।
कदली खम्भ गड़ाई माड़व छाएनि,
मोतिन चौक पुराय तौ कलस धराएनि।
घर घर फिरहिं नउनिया तौ गोत बोलावइ,
राम लखन के नेहछू सबै कोई गावै।
आले पाट के जाजिम झारि बिछाएनि,
बैठी सखी सब चार तौ मंगल गावैं।
चलहु गोतिन सहचारहु पंडित बोलावैं,
पढ़हिं वेद करि मंगल पुनि नहवावैं।
कानन कुण्डल लसै सोह सिर चौतनी,
गल बैजन्ती माल पियरा भल सोहइ।
कोऊ डालै सोन मुँदरिया तौ कोऊ डारै रूप,
कोऊ डारै रतन पदारथ तौ भरिगा है सूप।
केकई डारै सोन मुँदरिया सुमित्रा रूप,
कौशिल्या रानी रतन पदारथ भरिगा है सूप।
गोरी गोरी बहियाँ नउनिया की हरी हरी चूरियाँ,
लाली महावर देइ तौ पतरी अँगुरियन।
मड़ये माँ झगरै नउनिया तौ यह सब थोर,
राम लला के नेहछू मैं लेहौं पटोर रे।
रूइए माँ झगरै नउआ तौ यह सब थोर रे,

राम लला कै नेहछू हम लेबै घोड़ रे।
चुप रहु नउआ नउनिया त नेहछू बटोर,
बियहि राम घर अइहैं तौ घोर पटोर रे।
राम बियहि घर आए तौ दिहिन हैं घोड़ रे,
नउआ जे चढ़हिं न पावै नउनिया का लैगा
चोर।

(८)

[इस गीत में मौरा के सगुन का वर्णन है। मौरा लगा कर वर थोड़ी देर के लिए मानो त्रिभुवन का राजा बन जाता है। उसकी उपमा में उस समय गया के गजाधर, बेनी माधो और स्वयं रामचन्द्र जी भी छोटे हो जाते हैं]

कौने नगरिया से आई है मलिनिया कौन सगुन लिए ठाढ़,
अवध नगरिया से आई है मलिनियाँ तौ मौरा सगुन लिए ठाढ।
कि मौरा बाँधईं गया के गजाधर प्रयाग बेनी माधो,
कि मौरा बाँधै सिरी राम,
नाही मौरा बाँधै गया के गजाधर प्रयाग बेनी माधौ नाहीं
बाँधै सिरी राम।
ई मौरा बाँधै दुलहे कवन राम बाँधि चलें हैं ससुरारि,
ससुर दुअरवा बरोठ बड़ा साँकर अटकै मौरवा कै खोंप
बाहर बाटिउ कि भितरे कवन देई लोकि लेउ मौरवा कै गेंद,
कैसे के लोकौं स्वामी मोरे का खोंपवा देखिहैं नैहरवा के
लोग।

का करि हैं भाई हो का करि हैं बाबा का करि हैं नैहरि के लोग,
गाँठि जोड़ चौकि चढ़ि बैठिहौ देखिहैं सजन सब लोग।

(९)

[इस में दुलहा दुलहिन तथा परिवार वालों के विवाह के अवसर की विशेष वेश भूषा का वर्णन है]

कहँवा उपजइ मोती कै माला कहँवा लहर पटोर
सुनार घर उपजहि मोती कै माला बजाज घर लहर पटोर।
केइ घर उपजहि मौरे कै खोपवा बटिया चलत फहराइ,
माली घर उपजहि मौरे का खोपवा बटिया चलत फहराइ।
कौने लाला पहिरै मोती कै माला कौन देई लहर पटोर,
कौन लाला पहिरै मौरे का खोपवा बटिया चलत फहराइ।

(१०)

[उस समय की बारातों को विवाह में जाने के लिए जो कष्ट उठाना पड़ता था उसका कवित्व पूर्ण वर्णन है]

छोट मोट पेड़वा चँदन कै पतवन झापस,
तेहि तरे खड़े रामचन्द्र पलकी सँवारैं
लछिमन सँवारै आपन घोड़।
फिरहु फिरहु भइया लछिमन बहुत दिन लगि हैं,
हमरी बरतिया बहुत दिन लगि हैं मरि जावै भूख पियास।

भुखिया हम सहबै पियसिया हम सहबै,
भइया सहबै चैतवा कै घाम।
सीता ऐसन अपनी भौजी जो देखबै
नैना तो जइहैं जुड़ाय।
राम बियहि घर आयें अजोध्या अनंद भए,
राजा दसरथ पटना लुटावैं कौशिल्या देई अभरन।

(११)

[इस गीत में पुत्र विवाह के समय बहू आने का सुख और पुत्र के पराए होने के दुख का सजीव वर्णन है। आज माँ का लाडला माँ से बिछुड़ रहा है। उसे यशोदा की भाँति यही फिक्र है कि उसके दुलरैते को भूख लगेगी तो किससे माँगेगा। पर संसार की माया भी अजीब है। जीवन भर पालने पोसने वाली माँ क्षण भर में भूल जाती है और सास ही सब कुछ हो जाती है।]

केहि बन उपजी है खैर सुपारी केहि बन उपजे हैं पान,
केहि कोखि उपजे हैं रानी के दुलरुआ, केहि गाँव ब्याहन जायँ।
बन में नौ उपजी है खैर सुपरिया भीठ में उपजे हैं पान,
मैया कोखी उपजे हैं रानी के दुलरुआ ओहि गाँव ब्याहन जाइँ।
द्वार से दूर बरात जो पहुँची कोठे चढ़ि बोलैं माई,
हमरे दुलरुआ कै भूख सतावै दूध बिन ओंठ कुम्हिलाइँ।
केहि हाथे भेजूँ मैं खैर सुपारी केहि हाथे ढोली भर पान,
केहि हाथे भेजूँ मैं दूध का कटोरा ललुआ के ओंठ सींचे जाइँ

नउआ हाथे भेजूँ खैर सुपारी, तम्बोली हाथे ढोली भर पान,
देवरा हाथे भेजूँ मैं दूध का कटोरा दुलरुआ के ओंठ सींचे जाइँ।
मचियै बैठी हैं रानी समधिनि देई सुनो समधिन मोरि बात,
अबतो दुलरुवा हमारे हैं समधिन अबतो तुम्हारे हैं नायँ।
अपने दुलरुआ को दूध पियाऊँ तो अँचरन करौं बयार,

(१२)

साँझेन घोड़वा पलानेनि दोउ भइया तौ बन के अहेरे जायँ,
इक बन गयेनि दुसर बन गयेनि तिसरे सीता रखावैं फुलवारि।
केकरी हौ तुम बारी दुलारी केकरि रखाओ फुलवारि,
राजा जनक जी की बारी दुलारी उनकै रखावौं फुलवारि।
जौ राजा जनका की बारी दुलारी उनके रखाओ फुलवारि,
आइ न बैठौ हमरी बगलिया लेहु न बास सुबास।
कैसे मैं बैठौं बगली तुम्हारी अबहीं तौ बारि कुँवारी,
जब मोरे बाबा अच्छत लै संकलपैं हो, कुस लै संकलपैं बैठौं मैं
बगली तुम्हारी।

(१३)

[यात्रा के समय कौवा का बोलना लोग असगुन मानते हैं। यह असगुन राम वनवास की ओर संकेत मालूम होता है। दशरथ ने असगुन का दोष मिटाने के विचार से सीता जो के बारे में जाते ही पूछताछ आरम्भका।]

साजि बरात चले राजा दशरथ दाएँ बोलै काग,
साजेनि हाथी रे साजेनि घोड़ा साजेनि सगरी बरात।
असनै के घोड़वा रामजी का साजिन मोतियन लगी है लगाम,
जाइ बरात जनकपुर उतरी होइ दुवारे का चार।
सब कोई निहारें अरतिया बरतिया सासू निहारें दमाद,
ठाढ़ें राजा दशरथ पूछें, चेरिया कलस लिहे ठाढ़।
देहौं मैं चेरिया दुनौ कान ढेरिया मोरे आगे सीता बखान,
का मैं सीता बखानौं राजा दसरथ सीता सुरुजवा कै जोति।
चाँद सुरुज जोत धूमिल लागै सीता हैं अनमोल।

(१४)

[इस गीत में बारात की अगवानी का सुन्दर वर्णन है। उसके बाद कन्या के सौंपने में माँ का बड़ा ही कवित्व पूर्ण कथन है।]

राजा जो चले हैं ब्याहन रुन झुन बाजन,
अहो उपरा सुगना मँड़राय हमहु जावै ब्याहन।
धावहु न नउआ औ बरिया अवधपुर के बाँभन,
जनक के आगे खबर जनावौ कहाँ दल उतरइ हो।
ऊँचे नगर पुर-पाटन आले बाँस छावा है,
अरे बहुत है जूड़ि बयार उहइँ दल उतरइ हो।
जब राजा रामचन्द नगर नियराए हैं,
तब बरियन छतवा दिखावैं तौ राम चले ब्याहन।
जब राजा रामचन्द चौकहि बैठे हैं हो,
तब नउआ तौ कलस दिखावैं राम चले ब्याहन।

जब राजा रामचन्द्र कोहबर आए हैं हो,
सरहज छेकहिं दुआर तौ राम चले ब्याहन।
'खोलौ सासु सुबरन केवार तौ हम आई कोहबर'
'कैसे खोलौं सुबरन केवार तौ राम आवैं कोहबर।
मोरी सीता तौ बारी भोली हैं बोलहू न जानैं,
हमहूँ केवल कै फूल दुनहु जने बिलसब।

(१५)

[यहाँ पर कुछ बन्ना बन्नी जिस प्रकार ये लड़के वाले के यहाँ गाए जाते हैं दिए जा रहे हैं। कुछ घोड़ी और सेहरा तथा मुबारकबादी भी दी जा रही हैं। जान बूझ कर ये गाने हमने नमूने के लिए दिए हैं। ये गाने शहर व गाँव सभी जगह की स्त्रियाँ खूब जानती हैं। शहर के गानों में तनिक उर्दू अधिक होती है और गाँव के गानों में कुछ कम। सेहरे और घोड़ी तो उर्दू में बड़े ही सुन्दर हैं। यहाँ तो कोशिश यही की गई हैं कि कुछ गाँव के जैसे ही गाने दिए जायँ]

बन्ना

गुलदावदी का फूल बन्ना बाग लागै दे,
बाग लागै दे बन्ना वह बाग लागै दे।
मौरी में लागै दे बना लरियों में लागै दे,
गुलदावदी ... ... ।
मोती में लागै दे बना चुन्नी लागै दे,
गुलदावदी ... ... ।

जामा में लागै दे बना सन्दल में लागै दे,
गुलदावदी ... ... ।
जूते में लागै दे बना मोजे माँ लागै दे,
गुलदावदी ... ... ।

(१६)

बन्ना

मेरा फूलों सा सुन्दर सजीला बना,
चला दुलहिन लाने रँगीला बना।
तेरी मौरी पर सूरज लुटाए किरन,
तेरी लरियों पर चाँद शरमीला बना।
तेरे मोती पर सूरज लुटाए किरन,
तेरी चुन्नी पर चाँद शरमीला बना।
(इसी प्रकार लगा लगा कर कहा जाय।)

(१७)

बन्नी

बने तेरा नाम सुन कर आई,
बने तेरे आजा की ऊँची महलिया,
बने मैं नीचे नीचे आई। बने तेरा०
बने तेरी दादी के नखरे भारी,
बने मैं उनसे बढ़ कर आई। बने तेरा०

(आजा के स्थान पर पुरुष सम्बन्धियो के और दादी के स्थान पर स्त्री सम्बन्धियों के नाम लेकर गाया जाता है ।)

(१८)

घोड़ी

नचन घोड़िया आवै कूदत घोड़िया आवैगी मेरी जान, आवैगी मेरी जान आवैगी साहबान, हँसत घोड़िया आवै० सिर सोहै सोने की मौरी लरियन अजब बहार। नचत०

[इसी प्रकार घोड़ी के पूर्ण शृंगार को लगाकर गाया जाता है।]

कहरवा या खेमटा ताल

मा	सा रेग रे रे ग	म पध पध पम	ग ग	रे रे ग	
न	च त घु डि या	आ ऽऽ वै कु	द त	घोड़ि या	

म ध पथ म	ग सा – नी	सा –सा	
आ ऽ वैइ ऽ	गी है ऽ री	जा ऽ न्	
		×	

(१९)

घोड़ी

घोड़ियन अजब बहार कुँवर से घोड़ी आई।
की घोड़िया तुम आप से आई कि भेजेनि सुलतान। कुँ०
ना घोड़िया हम आप से आई ना भेजेनि सुलतान। कुँ०
घोड़िया तौ भेजैं ससुरु कवन बाबू चढ़ि आवैं
दुलहे राजा। कुँ०

(इसी प्रकार ससुराल के सभी पुरुषों का नाम ले सकते हैं।)

(२०)

घोड़ी

घोड़ी मैं बाँधौ अगर के रूख चँदन के रूख,
कि मेरे द्वारे चम्पे की दुइ कलियाँ राम।
घोड़ी तो चढ़हिं बसुदेव जीके लाल, यशोदा
जीके लाल, पूनम केरे चाँद, हीरा केरे हार,
मथुरा के बसिया हो राम।
धनि धनि कृष्ण कन्हैया, धनि वह सेहरा सुभाग,
दादी जीके हाथ, अम्मा जी के हाथ जो सेहरा
कि झुकि झुकि बँधावैं राम।
कन्हैया दौड़ आए पूँछइँ एक बात,
अपने आजा जी की गोदिया, बाबा जी की
गोदिया धाई चढ़े हैं राम।

धनि धनि जसोदा जैसी मात, बसुदेव ऐसे बाप,
जिनकी डेहेरिया श्याम खेलैं राम ।

(२१)

[एक हाथी भी हम देते हैं । ये संगीत व भाषा दोनों में थोड़ी से भिन्न हैं ये पुराने लगते हैं । हो सकता है मुसलमानों के पहले ये ही गाए जाते हों ।

अलमस्त हाथी साजि चलिये, लाल बहुरँग बनि चले ।
बायें औ दहिने काग बोलै हंस लीला दाहिने,
रानी के श्री कृष्ण चलें हैं ब्याहन माँय अंचल गहि रहे ।
मेरे दूध का बेटा मोल दीजै होत लालन परबसै,
छोड़ो छोड़ो माता मेरी जननी दूध मोल न कीजिये ।
कोई तुम सरीखी बहुअ लाऊँ वाई चरनन सिर धरूँ,
कोई जाय अम्मा दादी सुख सुनाओ आवत लाल बहू लिये ।

(२२)

सेहरा

गूँधि लइयो री मलिनियाँ मोती चूर सेहरा ।
सिर सोहै भारी का चीरा कलँगिन वाह वाह ।
रँगीले कलँगिन वाहवाह छबीले कलँगिन वाहवाह ।
[इसी प्रकार आगे भी लगाकर कहता जाय]

विवाह

लोक गीतों के जिस समुद्र का परिचय मैं अपने पाठकों को देना चाहती हूँ उसकी एक बूँद भी यह पुस्तक बन सकती है इसमें मुझे संदेह है। फिर भी यदि गलत या सही इस पुस्तिका को एक बूँद मान ही लिया जाय तो जिस प्रकार समुद्र की लम्बाई चौड़ाई और गहराई भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न है और उसके अनेकों पहलू हैं उसी प्रकार बूँद का भी अपना छोटा सा अस्तित्व है जो विविधताओं से पूर्ण है। बूँद के बीचो बीच उसका केन्द्र होता है। लोक गीतों में भी केन्द्र होता है। लोक गीतों के इस केन्द्र स्वरूप ही ये विवाह के अवसर के गीत हैं। ये करुण रस का मर्म स्थल हैं।

कन्यादान ही इस करुणा का मर्म स्थल है। जिस कन्या को पालते समय माँ बाप ने अपने प्राणों की भी बाजी लगा दी थी, और घर में आने जाने वाले सब उसी को पूछते रहते थे, माता पिता के बनाये हुये समाज के कण कण में जैसे वह कन्या व्याप्त है। क्या सचमुच वह दूसरे की हो रही है? 'जनक की कुरिया उजरि गई बाबा बसि गए दशरथ राउ हो।'

जब कन्या को सौंपते समय बाबा के हाथ का गड़वा और कुश

की डाभी तथा सारा घर परिवार काँपने लगता है तो मानो बेटी उन्हें याद दिलाती है, 'तुम न कँौ मोरे इतने से बाबा यह तौ धरम केरी जून।' यह ज्ञान बेटी नहीं दे रही है उसके मुख से जगत जननी सृष्टि बोल रही है, जगत मोहक काम बोल रहा है। मंत्र पढ़ते समय यह कहा भी जाता है कि 'कन्या काम के लिए' अर्थात सृष्टि रचयिता को सृष्टि चलाने के लिए अर्पण की जा रही है। ऐसे धर्म के समय की करुणा को क्या आप शुद्ध करुणा कह सकते हैं ? जिस करुणा के ऊपर शिव का हाथ हो, विष्णु का हाथ हो ऐसी करुणा को आप क्या कहेंगे ? जिसके विरोध में कोई तर्क नहीं, किसी की जीभ हिल नहीं सकती केवल आँसू बहते हों ऐसी करुणा को क्या कहा जाय ? जिसके भीतर आनन्द का एक स्रोत भी आकर मिल गया हो वह करुणा स्वर्ग की निवासिनी है। यह नव रस के परे की वस्तु है। इस केन्द्र रूप भावना के सैकड़ों पहलू हैं और वे कभी कन्या का परिताप, कभी माता पिता और भाई का संताप होकर अखण्ड रूप में बहते रहते हैं। जो गीतों की भाषा में ही गाए जाने पर रस देते हैं उनमें से कुछ बानगी के रूप में यहाँ उपस्थित हैं।

(१)

[लड़कियों का होना पहले दायज इत्यादि कुप्रथाओं के कारण अशुभ माना जाता था और कहीं कहीं उन्हें जनमते ही मार डालते थे कभी ममतामयी माता किसी कन्या को घर के पुरुषों से छिपा कर पाल लेती थी। ऐसी ही एक कन्या की कथा का संकेत यहाँ है]

बरहा बरस बेटी पाल्यों अहाँ बेटी पाल्यों,
बेटी ठाढ़ी रसोइयाँ के दुवारे त बाबा के नज़र पड़ी।
धनियाँ न हो मोरी रनियाँ तुमहिं ठकुराइन,
रनियाँ केहि कै तिरियवा रही ठाढ़ि इतनो रूप आगर।
काह कहौं मोरे राजा कहत लाज लागै,
राजा अगिया के आई देवरनिया एतनी रूप आगर।
राजा जरिगा है ज्ञान तुम्हार त भयहो निरेख्यो।
निसरहु ए बेटी निसरहु निसरि बनहिं जाहु,
बेटी परिगै बबइया जी के दीठि त जियहि न पइहौ।
मइया तुमहि मोरी मैया तुमहिं ठकुराइन हो।
मइया कौन डगरिया धै के जाऊँ तो रहिया न सूझै रे,
जवर नवर दुई कूकुर सोने कै सीकर रे,
बेटी आगे पीछे लेहु अगुवाई त रहिया बतावैं रे।
एक बन गइलीं दूसर बन तिसरे में वृन्दा बन,
ह्वै गई बबइया जी से भेंट त रहिया माँ रोकैं रे।
केहिकी हौ तुम धेरिया तौ केहि कै पतोहिया,
बेटी केहि के निकारे तुम निकरी त जात हौ विन्द्रावन रे।
बाप तो हमरे कवन लाल मइया कवन रानी रे,
बाबा मइया के निसारै हम निसरी त जाइत विन्द्रावन रे।
लौटहु ए बेटी लौटौ लौटि घरे चलौ रे,
बेटी पुजिहौं मैं पाँव तुम्हार तौ जइहौं बैकुन्ठै रे।
धावहु नउआ औ बरिया अउर दस बाँभन हो,

बेटी जोग बर ढूँढ़ि लाओ कन्या संकलपौं हो।
बाबा ने धेरिया सँकलपी जैसे जल माछरि रे,
मइया ने धेरिया छिपाई जैसे घिउ गागरि।

(२)

[सन्देह नहीं कि विवाह के बाद लड़की का पुनर्जन्म होता है। एक वातावरण, परिवार तथा रागात्मकता की छत्र छाया से दूसरे ही प्रकार की छाया में लड़की जाती है। यह दुख और प्रसन्नता प्रसव वेदना के जैसी ही होती है। इस गीत में इसी वेदना का रस लीजिए]

मोरे पिछवरवाँ लवँगिया के बगिया लवँग फूलै आधी रात रे,
ओहिरे लवँगिया कै सीतल बयरिया महकै बड़े भिनुसार।
तेहि तर बतरा है सोनरा बेटौना गहना गढ़ै अनमोल रे,
सभवा बैठ बाबा गहना गढ़ावैं बिछुवा में घुँघरू लगाय।
गढ़ु सोनरा कंगन गढ़ तुहु बेसर तिलरी में हीरा जड़ाय रे,
मानिक मोती से बेंदिया सँवारहु चमकै बेटी कै माँग।
यतना पहिनि बेटी साँवर होयगा मुँहवा गयल कुम्हिलाय।
की तोरा बेटी रे दायज थोरा की रे भैया बोलै रिसियाय रे,
की तोरे बेटी रे सेवा से चुकल्यूं काहें तोरा मुँहवा उदास।
ना मोरे बाबा रे दायज थोरा नाहीं भैया बोलैं रिसियाइ रे,
ना मोरे बाबा हो सेवा में चुकलीं यहि गुन मुँहवा उदास।

तब तो कह्यो बाबा नियरे बिअहबै बिअहेउ देसवा के ओर रे,
नैहर लोगे दुलभ ह्वैहैं बाबा रहबै बिसूरि बिसूरि।
बोलिया तौ यस तुहूँ बोलिउ बेटी मरलिउ करेजवा में बान,
अगिले के घोड़वा बीरन तोर जैहैं पीछे लागे चारि कहार।

(३)

[इस गीत में भोली बेटी के चरित्र का तथा भावज के निर्मोही चरित्र का सुन्दर वर्णन है]

पुरुब पछिम मोरे बाबा कै सगरवा पुरइनि हालर देइ,
तेहि घाटे दुलहे धोतिया पखारैं पूछैं दुलहिन देई बात।
केकर अहे तुँ नतिया रे पुनवा कौने बहिनिया क भाय,
कौने बनिजिया चले वर सुन्दर केकरे सगर नहाउ।
अजवा कौन सिंह क नतिया रे पुतवा कौन कुँवरि कर भाई,
सेन्दुर बनिजिया चले हम सुन्दरि ससुर के सगरे नहाउँ।
येतनी बचन सुनि दुलही कौन कुंवरि धाय माया लगे जायँ,
जे बर मोरी माया नगरा ढुँढ़ाये से बर सगरे नहायँ।
राम रसोइयाँ भौजी कौन कुँवरि धाय भौज लग जाय,
जे बर भौजी नगरा ढुँढ़ाये से वर सगरे नहायँ।
आवहु ननदोइया पलँग चढ़ि बैठहु कुँचहु महोबे के पान,
अपने कमनिया क डँड़िया फँदावहु लै जाउ बैरिनि हमारि।
की भौजी तोर नोनवा चुरायउँ का तेल दिहौं ढरकाय,
की भौजी तोर भइया गरिआयउँ कौने गुन बैरिनि तोहारि।

ना ननदी मोर नोनवा चुरायउ न तेलवा दिह्यो ढरकाय,
ना ननदी मोर भइया गरिआयउ बोली गुन बैरिनि हमारि।

(४)

[माँ का हृदय पहले तो बारात आते देख प्रसन्न है पर समय की गम्भीरता को समझ कर उसकी चित्त-वृत्ति घनघोर विद्रोह करती है।]

जेठ बैसखवा की खड़ी रे दुपहरी,
जुते खेत उड़ि गई है धूर।
घोड़वा तौ आवै रे अनती रे गनती,
हथिया आवैं सौ साठ।
पलकी के दल में आवैं दुलहे राम,
चँवर डुरइ चारो ओर।
खिड़की पयँड़िया होइके माया निहारै,
घेरिया अउर दस होइँ।
होत भोर सिर सेंदुर बाबा,
नौलख दायज थोर।
भीतर का मँड़वा अँगने दै मारिनि,
धिया सतरौ के न होइँ।
जो मैं जनतिउँ धिया कोखि अइहैं,
पीतिउँ मरिचि झरार।
मरिचि की झारी धिया मरि जातीं,
छुटि जातै गंभीर संताप।

डासल सेजिया उदासि मैं डरतिउँ,
हरि जी से रहतिउँ कोहाय।
माया नहानी सुरुज पइयाँ लागेनि,
धेरिया जनम जिनि होय।
धेरिया जनमवा से झाँझर कोखिया,
तौ दिन दिन होय निगूढ़।
पुतवा जनम लैके निरबल कोखिया,
तौ दिन दिन होय सगोढ़।
बाबा नहाने सुरुज पइयाँ लागेनि,
धिया दस औरौ होइँ।
समधी दमाद दुनौ दल उतरैं,
धनि धनि भाग हमार।

(५)

[इस गीत में कवित्व अपनी चरम सीमा को पहुँच गया है। बाबा और बेटी का संवाद तथा फैसला सुन कर माँ की प्रसन्नता का वर्णन बस सुनते ही बनता है।]

माड़ौ छाइला माड़ो पटतारीला छाइला हरे हरे बाँस,
तेहि चढ़ि हेरैं बेटी के बाबा कत दल आवै बरियात।
हथिया अचास आवैं घोड़वा पचास आवैं रानी रौनिन
आवेली बहूति,
हथिया के चाके माके अदितौ न सूझै पैरन खेह उड़ियाय।

इतना देखि कै बेटी के बाबा फेरि फेरि लावेलँ केवाड़,
एती बरियाती मोरे केरे सँभरिहैं केरे देहैं कन्यादान।
भितरा से निकरी हैं बेटी कवन देई सुनु बाबा अरज हमार,
जनि बाबा हहरहु जनि बाबा झहरहु जनि चित करहु बिरोग।
एती बरियाती मोरे पितिया सँभरिहैं, मामा सँभरिहैं,
मौसा सँभरिहैं, फूफा सँभरिहैं, तुम बाबा दिहेउ कन्यादान।
एतनी वचन सुनि बेटी कै मायरि दुधवा कै अदहन देइँ,
कठिया के धोखे से चनन झोंकि देहली औ मुठियन झोंकहिं जीर।

(६)

[इस गीत में बेटी का आत्माभिमान भाई और पिता को उत्तेजित करता है। किन्तु आखिर में वर पक्ष वालों से कन्या पक्ष वालों को हारना होता है।]

बगिया के ओते ओते आइ गए लोग डेराइ गए,
डेराइ गए बेटी के बाबा तौ मँडिल छिपाइ गए।
का तुहूँ, बाबा छिपाइ गए लोग डेराइ गए,
आवइँ सजन सब लोग सजन से मिलि लेउ।
अरे अरे भइया कवन बाबू घोड़ा जिनि बाँधौ,
कुरुखेत कर मैदान सजन साथे लड़ि लेउ।
दिनवहु भरि भइया लड़ेनि त साँझी बेरी हारि गए,
भइया हारि गए बहिन कवन देई सरबगुन आगर।

(७)

[लोक गीतों में कहीं कहीं रहस्यात्मकता और कल्पना की चरम-सीमा पहुँच गई है। कन्या ऐसे पति की जिसके मुकुट में चाँद और सूर्य जड़े हैं कल्पना करती है।]

ऊँच ऊँच बखरी उठाओ मोरे बाबा ऊँच ऊँच राखो मोहार,
चाँद सुरुज दोनों किरनी बसत हैं निहुरै न कन्त हमार।
अम्मर सेनुरा मँगावो मोरे बाबा पिया से भराओ मोरी माँग,
सूघर बँभना से गँठिया जोरावहु जनम जनम अहिवात।
अम्मर डँड़िया फनाओ मोरे बाबा बिदुवा कराआ हमार,
सात परग संग चलिके हो बाबा अब मैं भइऊँ पराइ।

(८)

[इस गीत में शब्दों की ध्वनि मात्र से ही बारात के आने का दृश्य चित्रित हो जाता है।]

झम झम झमकि झमकि झट झरिया हे,
अवध नरेश की आवै बरिअतिया हे।
हथिया झुमत आवइ घंटा घहरइया हे,
ऊँटवा नगाड़ा हे देखो बजवइया हे।
घोड़वा चढ़े आवैं राम चारौ भइया हे,
घोड़वा गुमान भरि मारे फन फनवा हे।

राम जी के बाबू जी के पाकि गई दढ़िया हे,
दुवरे आवत समधी नाम को हँसाया हे।
बन्दूक कड़ाबीन गोला धुर फुर छोड़े हे,
हम तौ रहीं दुलहा परिछत जियरा डरपाया हे।

(९)

[इस गीत को पढ़ कर और इसकी शब्द योजना को देखकर बरबस कालिदास याद हो आते हैं। द्वार पर वर आया है बेटी की माँ की आँख पर सुख दुख मिश्रित वातावरण का चित्रण मधुमक्खी के छत्ते की उपमा से अद्वितीय हो गया है।]

ऊँचे हथिया के सोने के हौदवा रे,
ताहि चढ़ि आवैं दमाद दुलरुआ।
चोवा चँदन दुलहा गरदा उड़ावै, रे,
जोगा के मातल दुलहा पलकौ न लेइ हो।
सासू जी की अँखिया लगल मधु मखिया,
देखहू न पउली दमाद अलबेलवा।
छोड़ छोड़ मधुमखिया हमरी ओ अँखिया,
हिया भरि देखौं दमाद अलबेलवा।
राना परोसिन तुमहि मोरो गोतिन,
परिछि न लेतिउ दमाद अलबेलवा।
कैसे मैं परछौं दमाद अलबेलवा,
मोरे गले एकहु न मोतियन हरवा।

रानी परोसिन तुमहिं मोरी गोतिन,
लेहु न परोसिन हमार गले हरवा।
घामे के घमायल बटिया के थाकल,
हालि बेगि परिछौ दमाद सुकुअरवा।

(१०)

[बचपन के विवाह का यह एक स्वाभाविक वर्णन है।]

सोवत रहिउँ मैं मैया के कोरवा निंदिया उचटि गई मोरि,
केकरे दुआरे मैया बाजन बाजै केकर रचा है बियाह।
तुहीं बेटी आउरि तुहीं बेटी बाउरि तुहीं बेटी चतुर सयानि,
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै तुमरइ रचा है बियाह।
नाहीं सिखेन मैया गुन अवगुनवाँ नाहीं सिखेन राम रसोइँ,
सासु ननदि मोर मैया गरियावैं मोरे बूते सहि नहिं जाइ।
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवाँ सिखि लेउ राम रसोइँ,
सासु ननदि तोर माया गरियावैं लै लिहौ अँचरा पसारि।

(११)

[जब वर विवाह के लिए घर में आता है तो कहीं कहीं वह घेर लिया जाता है और लड़की का भाई उसे कसकर बाँधता है और उसके कपड़े उतरवाकर कन्या के घर की पियरी इत्यादि पहनाता है। पिता उसे आसन इत्यादि देते हैं। इस पर वर मचलता है और नारा नहीं खोलता। तब नेग मिलने पर खोलता है।]

मन मोरवा आज बँधाय गए मन मोरवा,
चित चोरवा आज बँधाइ गए चित चोरवा।
कहाँ गए, कित गए; कौने बाबू सरवा,
नौशे के बाँधे कसि डोरवा। मन मोरवा०
सोने के खम्भ रतन जड़ि माड़ो,
वाहि में चोरवा भुलाइ रहे, चित चोरवा। मन मोरवा०
कितनौ बाँधी छानी करौ मोरे सारे,
बिना टका खोलबै न डोरवा। हे चित चोरवा। मन मोरवा०

(१२)

[धोती पहनाते समय यह भी गाती हैं।]

से धोतिया पहनौ कवन बाबू सासु बेसाहा,
से धोतिया पहिरे न जानैं दुलहे कवन बाबू।
से धोतिया सार कवन बाबू पहिरि देखावौ॥

(१३)

[दुखपूर्ण वातावरण का सुन्दर चित्र है।]

बेटी जगावैं बाबा के बाबा न जागइँ रे,
बाबा कन्त मड़उना में ठाढ़ तौ आरती उतारहु।
आरती उतारइ के उतारि लेबै घेरिया न देबै,
से घेरिया जाँघ जनमाएउँ दूरि कैसे जइहैं।

बेटी जगावैं मैया के मैया न जागैं रे,
मैया कन्त मड़उना माँ ठाढ़ पाँव पखारहु।
पाँव पखारै का पखारि लेबै धेरिया न देबै,
से धेरिया कोखि जनमाएउँ दूरि कैसे करिबइ।
बेटी जगावैं अपने भैया के भइया न जागैं,
भैया कन्त मड़उना माँ ठाढ़ तो लउना परिछि लेउ।
लउना परिछै का परिछि लेबै बहिनी न देबै,
भैया बहिनी एक कोखिवा से जनमें दूरि कैसे होइहैं।
बेटी जगावैं अपनो भौजी का भौजी न बोलैं,
भौजी कन्त मड़उना में ठाढ़ तो सेन्दुरा वहोरो रे।
सेन्दुरा वहोरै का बहोरि लेबै ननदी ढकेलि देबै,
जेहि कर बारी बियाही उनहीं लै जइहैं।

(१४)

[इन गीतों में बेटी और पिता की प्रकृति साक्षात् और नग्न होकर बात करती प्रतीत होती है।]

बेरिया के बेर मैं बरजेउँ रे बाबा झँझरा मड़उना जिन छाये,
झँझरे मड़उना सुरुज दह लगिहैं गोरा बदन कुम्हलाय।
कहहु त मोरी बेटी छत्र तनाऊँ कहहुत अंचल ओढ़ाय,
कहहु त मोरी बेटी मंडिल छवाऊँ काहे के लागै घाम।
काहे के मोरे बाबा छत्र तनाउबे काहे के अँचल ओढ़ाय,

काहे के बाबा मंडिल छवौवे आजु के रतिया बसेर।
होत बिहान पह फाटत बाबा जाबै परदेसिया के साथ,
काहे के मोरे बाबा छत्र तनौवा काहे क मंडिल छवाव।
टाटक नयनूँ खवाएउँ रे बेटी दुधवा पियायेउँ सढ़ियार,
एकहू न गुन मानेउ मोरी बेटी चलिउ परदेसिया के साथ।
भइया कलेउना त हँसि हँसि दिहेउ हमरा कलेउना रिसियाय,
हम तौ चली परदेसिया के सगवा भइया देहैं दुधवा का मोल।

(१५)

[जब बर आँगन में आता है तो स्त्रियाँ आरती करती हैं]

साजि लिहिन बसन सम्हारि लिहिन भूषन,
तो हाथ लिए जी कनक थार आरतो तौ हाथ०
और पारि सब सुन्दर सखिया,
तो बीच चलीं जी अब सीता महतरिया। तौ बीच०
राम की सुरति देखि मोहि गई सासू जी,
सुधि नाही री, तौ भूषन बसन की। सुधि नाहि०
दुलहा निरखि कहैं सासू सुनयना,
सुनो सखी री प्यारे दुलहा के देखि लेहु। सुनौ सखी री

(१६)

[कभी गाली भी गाती हैं।]

अरे अरे काला भुसुन्दर मोर मानिक मति छुऔ,
जस जस हाथ पसीजै मानिक भीजै।

रामगारो

(माड़ो में आने पर)

रघु बंसिन रसिया रसहि रसे,
बेगि चलत प्रभु जबहिं मड़येतर ।
ज्यों जनमें बाजी वर से । रघु०
धीरे चलत प्रभु जबहि मड़येतर,
ज्यों जनमें वर करिवर से । रघु०
इतना सुनत प्रभु ठाढ़े अकड़ि कै,
ज्यों जनमें वर गिरिवर से । रघु०
मोद मुदित मन तबहिं भए प्रभु,
मुखहिं रुमाल दिए कर से । रघु०

ताल कहरवा

रघुबंसिन रसिया रसहि रसे,
चले मंडप आज सुन्दर बासे ।

रेम म	– गरे सा सा	सानी नी सारे –
र घु	ऽ बऽ सि न	र सि याऽ

– रेग – रे – सा	सा –
ऽ रस ऽ हि ऽ	से ऽ

प प | –प–प प | प ध प ध प ^{ग}म
च ले | ऽ मं ऽ ड प | आ ऽ ऽ ऽ ज सु

– प ध प म | ग रे सा |
ऽ घ र ब र | मे ऽ ऽ |

(१८)

[इस गीत को सुनकर पत्थर भी पिघल जाता है। यह गीत कन्या दान के समय गाते हैं।]

घरइल बन के करइल वृन्दावन के बाँस हो राम,
हरे हरे बाँस के मड़वा उठाए कदली खंभ गड़ाए हो राम।
पानन से बाबा मँड़वा छवाए लवँगन गूँथ दिवाए हो राम,
सुरही के गोबर बाबा मँड़वा लिपाए मोती से सारी चौक
पुराए हो राम।
सोन कलस बाबा मँड़ए धराए, चौमुख दीप बराए हो राम,
तहँ लै बैठाए बाबा जनक की कन्या राम बियाहन आए, हो राम।
केहि के हाथ गड़ुवा भल सोहै, केहि के बाँधे धोती हो राम,
केहि के कँड़िहर पटोरा सोहै केहि के कुश की डाभी हो राम।
बाबा हाथ गड़ुवा भल सोहै भैया धोती बाँधे, हो राम,
भैया के कड़िहर पटोरा सोहै बाबा कर कुश की डाभी हो राम।
कम्पन लागी हाथ गड़ुइया कम्पन लागी धोती हो राम,

कम्पन लागे कड़िहर पटोरे कम्पै कुश को डाभी हो राम।
अब न कम्पै मेरे इतने से बाबा, भई है धरम की जून हो राम,
चन्द्र ग्रहण बाबा नित नित लागै सूर्य्य ग्रहण छठे मास हो राम।
धिया को गहन बाबा माँझ मँड़ौआ, कब जाइ उग्रह होइ हो राम,
गउ दान बाबा नित नित करिए धिय को दान नहि होय हो राम।
धिय को दान बाबा माँझ मड़ोआ कब जाय उग्रह होय हो राम,
जनक की कुरिया उजरि गई बाबा, बसि गए दशरथ राउ हो राम।

(१६)

[भाँवरो के साथ भाई तो लावा परछता जाता है और वर वधू का अँगूठा लोटे पर धर कर दबाता है। एक हाथ से भाई पैर पर धार छोड़ता जाता है धार जहाँ टूटी नहीं कि बहिन को वह खो देगा। बड़ा ही करुण गान है।]

लावा न परिछौ कवन बाबू ई तौ बहिनी तोहार,
अँगुठा न मोरो कवन दुलहे ई तौ धनिया तोहार।
धरिया न छोड़ौ कवन बाबू ई तौ बहिनी तोहार,
धरिया टूटे पति जइहैं हरिहौ बहिनी आपन।

(२०)

भाँवर का गीत

पहिली भँवरिया के घुमतै बाबा अबहीं तोहार,
दुसरी भँवरिया के घुमतै चाचा अबही तोहार।

तिसरी भँवरिया के घुमतै मामा अबहीं तोहार,
चौथी भँवरिया के घुमतै भइया अबहीं तोहार।
पँचई ,, ,, ,, बुआ ,, ,,
छटईं ,, ,, ,, अम्मा ,, ,,
सतईं ,, ,, ,, बाबा भइउँ पराई।

(२१)

[नहछू नहान इत्यादि के तो वही गाने जो पीछे दिए गए हैं कन्यापक्ष में भी रहेंगे।]

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नाहीं जागैं,
देत सुनर एक सेंदुर भइउँ पराई।
भैया भैया गोहरावौं भैया नाहीं बोलैं,
देत सुघर एक सेनुर भइउँ पराई।
बन माँ फूली बेइलिया अतिहि रूप आगरि,
मलियै हाथ पसारा तौ होवौ हमारि।
जनि छुवौ ए मलिया जनि छुवौ अबहीं कुवांरि,
आधीरात फुलबै बेइलिया तौ होबै तुम्हारि।
जनि छुवौ ये दुलहा जनि छुवौ अबही कुँवारि,
जब मोरे बाबा संकलपै तौ होबै तुम्हारि।

(२२)

कोहबर

[सिन्दूर दान के बाद जब वर कन्या कोहबर में जाते हैं तब द्वार छेकाई होती है। इसका गीत 'सगुन' में दिया गया है। इसके उपरान्त

कोहबर गाए जाते हैं। जोग टोने भी गाते हैं। इन्हें हम पहले ही दे चुके हैं।

हटियै सेन्दुरा महँग भये बाबा,
चुनरी भयल अनमोल।
एहि सेन्दुरा केरे कारन बाबा रे,
छाँड़ेउ मैं देस तोहाँर।
बाबा कहैं बेटी दस कोस बियहौं,
भइया तो कहैं पचास।
माया कहैं बेटी नगर अयोध्या,
नित उठि गंग नहाँइँ।
बाबा जे दिहेलेन अन धन सोनवा,
माया जे लहर पटोर।
भइया जे दिहेलेन चढ़ने के घोड़वा रे,
भौजी ने अपना सुहाग।
बाबा कइ सोनवा नवए,
दिन चुकि है फटि जइहैं लहर पटोर।
भइया का घोड़वा मैं नगर फंदउबेउँ,
भौजी के बाढ़ै अहिवात।
बाबा कहैं बेटी नित उठि आयेउ,
माया कहैं छठ मास,
भइया कहैं बहिनी काज बियाहे,
भौजी कहैं कस बात।

(२३)

कोहबर

[इस अति करुण वातावरण के बाद एक दम परिवर्तन आता है और फिर स्त्री पुरु के मिलन की भावनाओं से ओत प्रोत गीत गाते हैं। ये गीत कोहबर कहलाते हैं। ये दोनों पक्षों में होते हैं]

काँस पितरिया का इहै नवा कोहबर मानिक दीप बरै,
ताही पैठि सूतैं दुलहे कवन बाबू पैंते दुलहिन देई रानी।
पैठि जगावैं माई रे कवन देई, उठौ बेटा भवा भिनसार,
ऐस माई तुरुक हाथ बेंचतेउँ, मुगुल हाथ बेंचतेउ आधी
राति कहै भिनुसार।

(२४)

कोहबर

काहेन केर तोरा कोहबर हाँरे भला कोहबर,
काहेन लगे हैं केंवाड़ तो इहै नवा कोहबर।
सोनेन केर मोरा कोहबर हाँरे भला कोहबर ए,
अहे रूपेन लगे हैं केवाड़ हाँरे भला कोहबर ए।
ताहि पैठि सूतैं दुलहे अरे दुलहे कवन बाबू ए,
अरे पैंते कवन सुहवे रानी तो नव रंग कोहबर।
आगे टरि सूतौ सुहवे अरि सुहवे कवनि रानी,
हवर।

इतनी बचन जब सुनैं अरि सुहवे कवनि रानी,
सुहवे रूसि के नैहर ओरी जायँ तौ नव रंग कोहबर।
आओ न आओ सुहवे कवनि रानी,
सुहवे जोड़वा हम लेवै धोवाइ तौ नव रँग कोहबर।

(२५)

कोहबर

[यहाँ कोहबर में क्या लिखा जाता है इसका वर्णन है]

मचियइ बइठी पुरखिन रानी रे, पूँछई बिटिया पतोह तो इहै नवा कोहबर
कहँवा लिखौं सासु पुरइन रे, कहाँ लिखौ बंसबार तो इहै नवा कोहवर
इक ओर लिखो बहुआ पुरइन रे, इक ओर लिखो बंसवार तो इहै नवा कोहउर
कहँवा लिखौं हँसा हँसिन रे, कहँवा लिखौं बन मोर तो इहै नवा कोहबर
कहँवा लिखौं सासु सुग्गा मैना रे, कहाँ सुग्गा मैना किलोल तो इहै नवा कोहबर
दनवा चुगत गउरैय्या लिखो रे, गइया बछ्रुउना के साथ तो इहै नवा कोहबर
कलसा लिहे चेरिया लौंड़ी लिखो रे, बम्हना पोथिया के साथ तो इहै नवा कोहबर

गइया दुहत अहिरा छौंड़ा लिखो रे, दहिया बेचत अहिर
घेरिया तो इहै नवा कोहवर
आरी आरी बेली के फूल लिखो रे और लिखो पनवारी
तो इहै नवा कोहवर
झपसन इमली फाल लिखो रे, अमवां झपसवन लाग तो
इहै नवा कोहवर।

(२६)

राम गारी

[विवाह के दूसरे दिन वर या समधी जब भोजन के लिए भीतर आते हैं तो प्रेम गाली से उनका सम्मान करते हैं। स्नेह की अति में गाली आ जाना बड़ा स्वाभाविक है। रामचन्द्र जी का कलेवा और गालियाँ तो बहुत प्रकाशित हैं अतः बानगी के रूप में यहाँ दो एक गीत मात्र दिए जा रहे हैं]

जेहि दिन राम जनकपुर आये देखन आई सारी दुनियाँ,
झिनवा के भात जतन से बनायौं मूँग के दाल बघारी,
मैदा की रोटी जतन से बनाओ ले घियना में चभोरी।
बरा फुलौरी औ मधु मेवा परवर की तरकारी,
पानन की पतरी बनि आई लौंगन डोभ डोभाई।
चन्दन की चौकी बनि आई भाँतिनि भाँति धराई,
भितरा के पँलगा बहिरे बिछाइन बस्तर धरिनि उतारी।

कंचन थार गेड़ुवा जल पानी धोइन पाँव पखारा।
धोइन पांव माथे चढ़ाइन एत बड़ भाग हमारी।
जेवन बैठे कुँवर चारो भैया देत सखी सब गारी,
गरिया के देंतै राम जी मखाने आँखी भईं रतनारी।
भितरा से उनकी सासु जी बरजैं मत देहु लाल जी का गारी,
हम तो तीनों लोक के ठाकुर हमरी तुम्हरी कस गारी।
जो तू हो तीनों लोक के ठाकुर काहे को आयो ससुरारी,
निहुरे निहुरे परसैं जनक राजा धोतिया धूमिल होई जाय।
अस अस धोतिया बहुत मोरे होइहैं। अस सजन कहाँ पाइब,
माया कौसिल्या चिठिया लिखि भेजा छाय रहे ससुरारी जी।
जेइँन अचइन खरिका लीहिन माँगै ससुर से बिदाई,
चाल हरिन की चितवन मरिग के घुमरि घुमरि पग धारी।
मैया उलारि पूछै बहिनी दुलारि पूछैं कइसी ललन ससुरारी,
ससुर के प्रेम कहाँ लौ बरनौं सासु गंगा जल पानी।
सारी से सरहज अधिक पियारी सार बड़े अभिमानी,
दस मास पुत्र उदर में राख्यौं दोनो थन पियो हलौरी।
एक रात पूत गयो ससुरारी सासु के कियो बड़ाई,
बहिनी के जाब ससुरारी न जावै माया बहिन पावैं गारी।
हम तो किहेन बेटा हंसी रे खेलवा तुम तो गयो रिसियाई,
बढ़ै रे ललन तोरी उहै ससुरारी नित के भोजन नित गारी।

नवहिं नवहिं सब गोपी आईं कृष्ण आए ससुरारी जी राम जी
जेंवन बैठे कृष्ण ॰ हैया देहिं गोपी सब गारी जी राम जी
दाल भात मैदा की पूरी ऊपरा नेबुल रस गारी जी ,, ,,
सोने कटोरिया घियवा परो सेऊँ परवर की तरकारी जी राम जी
देने दो गारी सासु देने दो गारी गारी है परम पियारी जी राम जी
सालों से सरहज अधिक पियारी सासु गंगा जल पानी जी राम जी
चिठिया जो लिखि भेजें मातु जसोदा आए ललन ससुरारी जी राम जी
मातु जसोदा पूछैं कृष्ण से कैसी ललन ससुरारी जी राम जी
सारी से सरहज अधिक पियारी सासु गंगा जल पानी जी राम जी
दसहि महीना एहि कोखि राखेउँ कबहूँ न कीन्ह बड़ाई जी राम जी
तीन दिन बेटा गए ससुरारी सासु के इतनी बड़ाई जी राम जी
माता जसोदा के पाँव छुवत हों अब न जाव ससुरारी जी राम जी

कृष्ण गारी (२)

नवहिं नवहिं सब गोपी आईं,
कृष्ण आये ससुरारी जी रामजी ।

राम गारी (१)

कहरवा

चरण कमल बलिहारी रघुनाथ कुँवर की ।

स्थायी

प नी नी नी | सा सा सा रेग | मग — — रे | सा नी |
च र ण क | म ल ब लिऽ | हा ऽ ऽ ऽ | री ऽ |

सा रे ग | ग — रे सरे | सा सा सा रे |
र घु ऽ | ना ऽ थ कुँऽ | व र के ऽ |

अंतरा

ऽ सा म ग म | प — प ध | प मप प म | ग रे सा — |
ऽ र त न सिं | धा ऽ स न | रा जाऽ द स | र थ जी ऽ |

— प नी नी | सा सा सा ग | मग — — रे | सा नी सा रे |
ऽ आ द र | च र न प | खा ऽ ऽ ऽ | री ऽ र घु |

| सा सा सा — |
| व र के ऽ |

सा रे रे रे सा सा सा ध़ ध़ ध़ सा सा सा – रे सा सा –
न व हिं न व हिं ऽ स ब ऽ गो पी ऽ आ ऽ ईं ऽ

रे म म ग रे सा सा रे म ग रे सा सा –
कृ ऽ ष्ण आ ऽ ये स सु रा ऽ री ऽ जी ऽ

(२८)

चरण कमल बलिहारी रघुनाथ कुँवर की,
रतन सिंहासन आसन ऊपर बैठे श्री रघुराई। रघु०
साने के झारी गंगा जल पानी सादर चरण पखारी। रघु०
जेवन बैठे राजा दशरथ बाएँ दहिने सुत चारी। रघु०
जब राजा रामचन्द्र जेवन बैठे देत सखी सब गारी। रघु०
एक सखी बड़ी चतुर सयानी बोली बचन संभारी। रघु०
एक पिता के चार पुत्र दुइ ग रे दुइ काले। रघु०
ऐसी तुम्हारी माता हो गईं कि यह अचरज भारी। रघु०
हम परसत तुम खाहु मिठाई लड्डू और सोहारी। रघु०
रिखि के संग बहिन चल गयली तुम बैठे ससुरारी। रघु०
तिनसै साठ मात रघुबर के एक पुरुप की नारी। रघु०
सत सुकृत उनको कैसे निबहे बरिस दिनन की पारी। रघु०
तामें एक जनक जी को दीजै होगी सुजस तुम्हारी। रघु०
तब बोले दशरथ उपरोहित सुनहु जनक जी की नारी। रघु०

गारी कैसे देहु मोरे राम जी लला को बोलहु बचन संभारी।
ना पतियाहु तौ लेहु परीछा राखहु अपनी अटारी। रघु०
सुनि गारी हँसे रघुनन्दन नेह लगावत भारी, गारी है परम पियारी। रघु०

बिदाई

(२९)

खाइ लेहु खाइ लेहु बेटी दहिया से रे भात,
तुम्हरी ओबिदवा बड़े रे भिनुसार।
धइ लेउ धइ लेउ माई आपन दहिया रे भात,
मांगत कलेउना ए माई उठिउ रिसियाय।
भइया के कलेउना ए माई हँसि खेलि देउ,
हमरी के बेरिया ए माई उठहु रिसिआय।
बजर की छतिया ए बेटी बिहँरि नहिं जाय,
चलत की बेरिया ए बेटी दिहेउ समुझाय।

(३०)

बड़े रे जतन से सिया जी के पोसे सोरे रघुवंसी लिहे जाय अरे सखिया।
अँगने माँ तड़पै माई हे सुनयना दुआरे जनक रिखि बाप, अरे सखिया
घन फुलवरिया माँ तड़पै सखियाँ सब जोड़ी बिजोड़ी भई जाय अरे सखिया।

बाट रे बटोहिया कि तुहू मोर भइया रे एही बाट देखौ सीता राम,

देख्यौं मैं देख्यौं ओहि रे अवध माँ तइपन सीता हँसइत राम अरे सखिया

चुप होउ चुप होउ माता सुनयना रे ई तौ जगत व्यवहार अरे सखिया

जुगे जुगे बाढ़इ सीता के सिंदुरवा अमर रहै अहिवात। हाँरे सखिया

जवने रे बटिया सीता मोरी जइहैं उजरा नगर बसिजाय। हाँरे सखिया

(३१)

कौन निर मोहिया चिठिया लिखाएसि,
कौन बेदनैता चिठिया का धरई नियार।
ससुर निरमोहिया चिठिया लिखाएनि,
बाबा बेदनैता चिठिया का धरईं नियार।
कौन निरमोहिया डँड़िया फँदावै,
कौन बेदनैता डँड़िया का डारहि ओहार।
सँइयाँ निरमोहिया डँड़या फँदावै,
भइया बेदनैता डँड़िया का डारहि ओहार।

(३२)

[अक्सर विवाह के तीसरे दिन बिदाई होती है। लड़की वालों के लिए यह समय सबसे कठिन होता है। कहते हैं कि लड़की की बिदा में ठूँठ भी रोने लगते हैं फिर माता पिता की क्या बात है]

सोवत रहिउँ मैं मैया के कोरवाँ मैंया के कोरवा हो।
मोरी भौजी जे तेल लगावैं तौ मुड़वा गुँथन करैं हो।
आई हैं नाउनि ठकुराइनि बेदिया चढ़ि बैठी हो।
वै तौ ललित मेहावरि देयँ तौ चलन चलन करैं हो।
एक कोस गईं दुसर कोस तिसरे मा विन्द्रावन हो।
धना झलरि उघारि जब चितवैं मोरे बाबा के कोई नाहीं हो।
लिल्ले घोड़े चितकाबर दुलहा न बोलें हो।
उनके हथवा सबज कमान आपन हम होई हो।
भूँख मा भोजन खियैहौं मैं पियासे मा पानी देहौं हो।
धनिया रखबौं मैं हियरा लगाय बबैया बिसरि जैहैं हो।

(३३)

आँगन लिपिनि दहादहि माड़व छाएनि,
राम चरित्र के कोहबर गौरी उरेहा है।
केहिका मैं मेंटौं पइयाँ परि केहिके करेजे लागि,
केहिका मैं भेंटौं अँकवारि कि गौने दूरि चली।
बाबा के भेंटौ पइयाँ परि मइया करेजे लागि,
भइया भौजी देहु अँकवारि त गौने दूरि चलिउ।
एक बन गई हैं दुसर बन तिसरे माँ बृन्दाबन,
डँड़िया उघारि जब देखौं केउ नाहीं आपन।
चुप रहउ चुप रहउ रनिया तु जिनि रोइ मरौ,
हमरे पटुकवा आँस पोछौं हमहि तोर आपन।

घोड़वा आवैं कवन बाबू पलकी कवनि देई,
अरे नयन झरैं मोरे आँसु डगरिया न सूझइ।
कि सुधि आए धना माई बाबू कि रे बिरन भइया,
धना कीरे कलेउना कै जूनि डगरिया न सूझइ।
ना सुधि आए माई बाबा नाही बिरन भइया,
साहेब ना ही कलेउना के जूनि डगरिया न सूझइ।
साहेब पाछे उलटि जब चितबौं केऊ नाही आपन,
सासु जब कुतकन मरिहैं ननद गाल नोचहिं।
साहेब आपु जो आँखी गुरेरब केहू नाहीं आपन,
सासु जे बहुआ गोहरइहैं, ननद कहिहैं भाउजि,
धन हम लेबै हृदय लगाय तौ हमहि होब आपन।

———

वधू-आगमन

इस पुस्तिका का यह अन्तिम भाग है। प्रकृति के सुखान्त नाटक का यह महामिलन है। इसे सुहाग रात भी कहा जाता है। प्रकृति की सबसे सुन्दर ऋतु कहलाती है बसन्त—जिसमें फूल खिलते हैं, कोयल गाती है, पशु पक्षी नाचते हैं। यह वधु के आगमन का समय भी हमारे हृदय में कुछ ऐसी ही प्रसन्नता लाता है। सारा घर, परिवार, टोला पड़ोसी अरजे परजे बहू के देखने की खुशी में रंग विरंगे सुन्दर से सुन्दर कपड़े पहनते हैं शृंगार करते हैं। जैसे वधू के साथ वह सुहाग सबके ऊपर बरसने लगता है। फिर वर बधू की परछन होती है, वधू से सब के पैर छुवाए जाते हैं। मुँह देखाई होती है। वह खाना बनाती हैं, जीरा धनिया पिसाया जाता है—इत्यादि। इस समय आनन्द के वेग में जो कुछ गाया जाता है वह कल्पना प्रधान नहीं हो सकता स्वाभाविक ही है वह नृत्य प्रधान होता है।

जीरा धनिया पीसते समय सोहर गाएं जाते हैं। ये सभी गाने बहुत प्रचलित हैं। इन गानों को नकटा या दादरा कहते हैं। नकटा हो सकता है नट शब्द से नटका से बिगड़ कर बन गया हो। ये गाने बारात के बिदा होने के दिन से ही वर पक्ष के यहाँ आरम्भ हो जाते हैं। विवाह की सारी रात स्त्रियाँ जग कर विवाह का हास्य नाट्य करती हैं। उस दिन लीला और नृत्य का ही दिन है। इस प्रकार

बराबर ये गाने चलते ही रहते हैं। फिर बहू आने पर सोहर के गम्भीर गीतों में इनका अंत होता है। ये सोहर अधिक तर पुत्रोत्पत्ति के नहीं होते केवल पुत्र की भावना को उकसाने वाले होते हैं। इसी लिए इन सोहरों में पुत्र की भावना का पूर्ण विकास नही मिलेगा। इनमें कली का सौन्दर्य है फूलों की सुगन्धि नहीं। ये गाने दादरा तथा सोहर इतने प्रचलित हैं कि इन्हें हम यहाँ केवल दो चार नमूने के लिए ही दे रहे हैं अधिक नहीं।

(१)

[राम चन्द्र जी को अकेला आते देख कौशिल्या घबड़ा रही हैं। पहले कम दहेज मिलता था तो लोग बहू की बिदा नहीं करवाते थे]

अपने मंदिर चढ़ि चितवै कौशिल्या रानी,
काहे रामा आवहिं अकेल।
किया सीता छोटी बाड़ीं किया सीता साँवर,
किया सीता कुलवा कै हीन रे।
नाहीं सीता छोटी बाड़ीं नाहीं सीता साँवरि,
नाँही सीता कुला कै हीन रे।
सीता का बाबा दहेज नाहीं दिहेनि,
येहि रामा आवहिं अकेल।

(२)

[बहू की प्रतिष्ठा में घर की स्त्रियों की भावना का एक चित्र है।]

भूरि भूरि भैंसी बेसाहो मोरे बाबा,
मोटे मोटे बरहु छेनान।
आवत होइहैं दुलरुआ की दुलहिन,
बिन घिउ खिचड़ी न खाइँ रे।

(३)

[इसी प्रकार की भावनाओं के गीत बहू आने के समय गाये जाते हैं।]

सोनवा सिंधोरा लिहे चितवैं कौन देई जगमग होइ अँजोर।
आवहु चन्द्र बदनि हमारे घर उतरहु जगमग होइ अँजोर।

(४)

एहि रे अजोधिया में भवा है अँजोर,
राजा रामचन्द्र बहुआ लेइ आएँ।

(इसके बाद अयोध्या के जगह लड़के के नगर का नाम लेकर तथा रामचन्द्र जी के जगह लड़के का नाम लेकर गाते हैं।

(५)

परछन

जिस प्रकार बारात चलने पर वर की परछन की जाती है बारात आने पर वरबधू का परछन स्त्रियाँ करती।]

परिछन करहि चली हैं सुन्दर कामिन हाथे सिंधोर लिहे आरती
पहिले तो परिछहिं सिर के मौरी फिर परिछहिं तिलक लिलार।
पहिले तो परिछैं दुलरू कवन राम पाछे ससुर जी की धीय।

(६)

नकटा

कुंजन बन खेलै मेरो बारो कन्हैया।
खेलन को माँगै चकई भौंरवा।
ऊपर से माँगै जुन्हैया जुन्हैया दइया कहाँ पाऊँ। बा०
खाने को माँगै पेड़ा औ बरफी
ऊपर से माँगै मलइया, मलइया दइया कहाँ पाऊँ। बा०
ओढ़न को माँगै साल दुसाला
ऊपर से माँगै दुलइया, दुलइया दइया कहाँ पाऊँ। बा०

(७)

हमारे राजा बोलत काहे नहियाँ रे।
हमरे जिया में चिंताभई है।
हम तौ भइनु राजा बन के हिरनियाँ तुम छत्री के जाए,
चढ़ाय बान मारत काहे नहियाँ रे। हमारे०
हम तौ भइनु राजा जलकै मछरिया तुम धीवर के ढोटा
बिछाय जाल फाँसत काहे नहियाँ रे। हमारे०

(८)

नाजुक नरम कलाई रे, पनिया कैसे जाऊँ ?
अपने ससुर जी की बड़ी रे दुलारी,

अँगने में कुइयाँ खोदाई रे। पनिया०
अपने जेठ जी की बड़ी रे दुलारी,
सोने के कलसा गढ़ाई रे। पनिया०
अपने देवर जी की बड़ी रे दुलारी,
रेशम की डोर बनवाई रे। पनिया०
अपने सइयाँ जी की बड़ी रे दुलारी,
घर ही कहार लगवाई रे। पनिया०
सासु हमारी जनमा की बैरिन,
अँगने की कुइयाँ पटवाई रे। पनिया०
जीजी हमारी जनमा की बैरिन,
सोने का कलसा तोड़ाई रे। पनिया०
दिवरानी हमारी जनमा की बैरिन,
रेशम की डोर जलवाई रे। पनिया०
ननदी हमारी जनमा की बैरिन,
घर का कहार छुड़वाई रे। पनिया०

(६)

कोहरवा बरसै हो धीरे धीरे।
कोहरवा बरसै चुनरि मोरी भीजै हो धीरे धीरे।
चुनरि मोरि भीजै पाँव मोरा फिसलै हो धीरे धीरे।
पाँव मोरा फिसलै गगरि मोरी फूटै हो धीरे धीरे।
गगरि मोरी फूटै चुरियाँ मोरी करकैं धीरे धीरे।

चुरियाँ मोरी करकैं ननद मोरी झाँके धीरे धीरे।
ननद मोरी झाँके सासु से लोही लावै धीरे धीरे।
सासु से लोही लावै सासु गरियावै धीरे धीरे।
सासु गरियावै सइयाँ से पिटवावै धीरे धीरे।
सइयाँ से पिटवावै मइके चली जावै धीरे धीरे।
मइके चली जावै बरिस बादि अउबै धीरे धीरे।

(१०)

जुगुति बताए जाओ, कौने बिधि रहबौं राम।
जौं तुम्हें समियाँ बहुत दिन लगिहैं।
अपनी सुरतिया मोरी बहियाँ पर लिखाए जाव।
हियरे बसाए जाव। कौन०
जो तुम्हें समियाँ बहुत दिन लगिहैं।
बिरना बोलाइ हमें नइहर पहुंचाए जाओ।
जोगिन बनाए जाओ। कौन०
जो तुम्हें समियाँ बहुत दिन लगिहैं।
बहियाँ पकरि हमें गंगा सेरवाए जाओ।
जहर खवाए जाओ। कौन०

(११)

सोहर

[सारी सम्पत्ति और सारे सुख एक चुटकी सेंदुर और गोद के ललना के आगे तुच्छ है।]

सवालाख अमवा लगाएउँ सवालाख इमली।
ललना तबहूँ न बगिया सोहावन एकरे चन्दन बिनु।
नैहर में सवा लाख भाई सवालाख भतीजा।
ललना तबहूँ न नैहर साहावन एकरे अम्मा बिनु।
ससुरे में सवालाख ससुर सवालाख देवर।
ललना तबहूँ न सासुर सोहावन एकरे पुरुष बिनु।
सेर जोखि सोना पहिरों पसेरी जोखि रुपवा।
ललना तबहूं न अभरन सोहावन चुटकी सेंदुर बिनु।
प्रभु जी की ऊँची अटरिया अटरिया चढ़ि बैठिनु।
ललना तबहूँ न महला सोहावन एकरे ललन बिनु।

(१२)

[बालक बड़े पुण्यों का फल है। भगवान जो मोतियों से गुछे पेड़ के नोचे उतरे हैं सबको बालक बाँट रहे हैं पर बहेलिन को नहीं दिया। वह काठ के बालक से जी समझाती है पर वह रोता भी तो नहीं। बड़ी विदग्ध दशा का वर्णन है।]

कुँज बन एक पेड़ सेहुलिया तौ मोतियन करइल,
तेहितरे उतरे नरायन बलका उरेहैं।
केहूका देहि रामा दस पाँच केहूक दुइचार,
मोरे रामा कौन कसूर हम कीन तो एकहू न पावा है।
मिलहू न सखिया सहेलरि तौ मिलि जुलिचलउँ हो,,
मोरी सखिया तेहितरे उतरे नरायन बलका उरेहैं।

नरायन केहूक देउ दस पाँच केहूका दुइचार,
नरायन कौन कसूर हम कीना एकहू नाहीं पावा है।
रजवा त तोरे बहेलिया औ रनिया बहेलिन.
रनिया लाख जिव मारहि बहेलिया त एकहू न पावै।
मोरे पिछवरवा बढ़इया बेगिहि चलि आवो हो,
मोरे भइया गढ़ि देउ काठे कै पुतरवा मैं जिय समुझावौं।
मींजि घसि पुतरा सोवाइनि तेलवा लगाइनि. कजरा लगाइनि,
ललना तनि एक रोइ सुनउतेउ तौ जियरा बोधौं।
अरे अरे राना परोसिन तुमहिं मोरी गोतिन हो.
गोतिन एहि बौरहिया समुझावौ पुतरवा कैसे रोवै।

(३४)

[यह एक मनोहारी सोहर है जिसमें एक नवयुवती एक अत्यन्त ह चतुर पर पुरुष को छलती है]

घाम घमैला एक जोगिया दुआरवा जे ठाढ़ा है,
जोगिया आओ न घमवा नेवारौ सितल छहियाँ बैठो।
इतनी बचन सुनि जोगिया डेहरिया चढ़ि बैठे,
जोगी पूछै लागें घर कै हवलिया कहौ रानी सुन्दर।
सासु जे गई मोरी हटिया ननद ससुरैतिन,
जोगी उन सइयाँ गए हैं बिदेस अकेले हम रहबै।
इतनी बचन सुनि जोगिया अटरिया चढ़ि बैठे,
जोगी खोलै लागे काँस पितरिया पहिरौ रानी सुन्दर।

पितरी तौ पहिनैं बानिन औ कलवारिन,
जोगी हम तौ रजन कर धेरिया पितरो नाहीं पहिरी ।
इतनी बचन सुनि जोगिया पलँग चढ़ि बैठे,
जोगी खोलै लागे सोनवा औ रुपवा पहिरो रानी सुन्दर
पहिरि ओढ़ी धना ठाढ़ी भईं झरोखवन चितवैं
जोगी भागे के होइ तौ भागौ घरइया मोरे आये ।
ना तोरे ओलिया न कोलिया न खिरकी दुवरिया,
रानी कौन भेष धइ के भागौं घरइया तोरे आएँ ।
हथवा माँ लेउ तेरजुइया बगल में पसेरिया,
जोगी बनिया भेष धइके भागो घरइया मोरे आएँ ।
देस देसान्तर मैं फिरेउँ कतहूं न छलि गएउँ
ए रामा बरहा बरिस कै त्रिटियवा तौ बतियन मोहिं छलै ।

(१३)

[कौवा बोलकर यदि उड़ जाय तो किसी के आने का सूचक माना है इस शकुन का इसमें सुन्दर वर्णन है]

मोरे पिछुवरवा बँसवरिया तौ कगवा बोली बोलै,
कागा कौन सँदेसा लै आएउ त बोलिया सोहावन ।
कि कागा भाई बाप भेजिन किरे बिरन मोरे हो,
मोरे कागा कौन सँदेसा लेइ आएउ बौलत सोहावन ।
नाहीं रानी भाई बाप भेजिन नाहीं रे बिरन तोरे हो,
मोरी रानी आजु तोरे राजा घरवा अइहैं तौ बोलत सुहावन ।
जो आजु राजा घर अइहैं त बोलत सोहावन,
मोरे कागा सोनवा मढ़उबै तोर ठोर रुपवा तोर दोनों डैः
बँसवा का कगवा उचारेनि उचरहू न पाएनि,

मोरे दुअरे भलाके टेढ़ी टोपिया त राजाघर आएनि।
कागा सोनवा मढ़उबै तोरे ठोर रुपवा दोनों डयन।
भाई का छोड़ेनि अँगनवा, बहिन के मचियवा हो,
रानी भभकि पयठ गज ओबर कहहु धन कुसल,
राउर सुधि आवै दुपहरिया, और तिजहरिया हो,
मोरे राजा राउर सुधि आवै आधी रात तौ जानहिं नरायन,

(१४)

[पुत्र होने से किसी की सम्पूर्ण धन सम्पत्ति कितनी भी बढ़ जाय पर कन्या के बिन धार्मिक और त्यागी वह नहीं हो पाता। कन्या का उत्पन्न करना, पालना और फिर दान करना किसी भी महायज्ञ से कम नहीं है]

आँगन बेदिया पटाइनि तुलसी लगाएनि हो
रामा उतरहु न हमरे अँगनवा मैं अरती उतारहुँ।
सोने के खरहुआँ राजा रामचन्द्र हथवा सुबरन साँटो,
रामा उतरहु न हमरे अँगनवा मैं अरती उतारहुँ'
हाथ जोड़ि बिनवइँ ब्राह्मण बिनती बहुत करैं हो,
रामा जौन मँगन हम माँगी तौन तुहुं दीहेउ,
सोनवा माँगै अढ़इया जोखि रुपवा पसेरिया जोखि हो,
रामा धियवा जो माँगै लँबगि अस पुत्र नरियर अस।
धिय बिनु होम न होइहैं दुधहिं बिनु जाउर,
रामा धिया बिनु धरम न होइहैं पुत्र बिनु सोहर।

—: समाप्त :—